स्वास्थ्य मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत कृ

शल्य क्रिया और आ

(रोगियों, रोगी की देखभाल करने वालों और
शिक्षित वर्ग के लिए उपयोगी तथा चिकित्सा
सम्बन्धी जानकारी देने वाली पुस्तक)

"राजा राम मोहन राय पुस्तकालय
प्रतिष्ठान कोलकाता के सौजन्य से"

डॉ० आर० सी० गुप्ता
बी०एस-सी०, एम० बी० बी० एस०, एम० एस० (सर्जरी)
एम० एस० (आर्थो), एफ० आई० सी० एस०,
एफ० ए० एम० एस०
पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, अस्थि विभाग
मोतीलाल नेहरू मेडिकल कालेज, इलाहाबाद

सर्वेश प्रकाशन
1, बाई का बाग, इलाहाबाद-211003

प्रकाशक :
सर्वेश प्रकाशन
1, बाई का बाग, इलाहाबाद

मुद्रक :
भार्गव प्रेस
11/4, बाई का बाग, इलाहाबाद

अक्षर संयोजन :
पियरलेस ऑफसेट
1/1 बाई का बाग, इलाहाबाद

संस्करण : 2002 ईसवी

मूल्य : रु0 150.00

श्री श्री 108 नारायण स्वामी जी महाराज

जिनकी प्रेरणा से इस पुस्तक की रचना संभव हुई,

के

चरण कमलों

में

सादर

समर्पित

– रमेश

अनुक्र

लेखक का निवेदन

प्राय: देखा गया है कि यदि किसी रोगी को शल्य क्रिया की सलाह दी जाती है तो परिवार, इष्टमित्रों, सगे सम्बन्धियों यहाँ तक कि पड़ोसियों में भी एक हलचल मच जाती है। गोया आपरेशन न हुआ किसी भावी दुर्घटना का सन्देश मिल गया। लेखक ने अब से कुछ वर्ष पूर्व तक तो शल्य कक्ष में जाते हुए रोगी को अपने परिवार जनो से बिलख-बिलख कर रोते और विदा होते हुए देखा है। यहाँ तक कहते सुना है कि यदि जिन्दा वापस आ गये तो आप सबके दर्शन करेंगे। यह कहाँ तक सत्य है इसे आप पुस्तक पढ़ने के बाद ही समझ सकेंगे। इतना अवश्य है कि शायद अब शल्य क्रिया भी मनुष्य के जीवन में उतनी ही आवश्यक हो गई है जितना बस, रेल या हवाई यात्रा करना। दुर्घटनायें दोनों में सम्भव हैं परन्तु इसका अर्थ यह तो नही है कि आप बस या रेल में चढ़ते समय यह सोचें कि आप जान बूझकर मौत के मुख में जा रहे हैं।

लेखक जो स्वयं एक सर्जन है — को अपने स्वयं के परिवार की एक घटना भुलाये नहीं भूलती है। उसके दोनों पुत्रो को टॉन्सिलाइटिस थी। बच्चे जरा-सी बर्फ या आइसक्रीम खाते या ठण्डा पानी पीते और फ़ौरन गला बैठ जाता, साँस फूलने लगती और बुखार हो जाता। चिकित्सकों को दिखाया। उन्होंने मल्टीविटामिन व एन्टीबायोटिक दवायें दीं ताकि टान्सिल मे पड़ा मवाद सूख जाए और शरीर की प्रतिरोधी शक्ति अच्छी हो जाए। फिर गले के डाक्टर को दिखाया। उसने आपरेशन की सलाह दी। घर आकर सर्वसम्मति से तय हुआ कि किसी होम्योपैथ को दिखाया जाय। होम्योपैथ को दिखाने पर

उसने बिल्कुल ठीक करने की गारण्टी दी व एक लम्बी लिस्ट उन लोगों की बताई जो आपरेशन के मुँह में जाते-जाते मीठी गोली से ठीक हो गये थे। फौरन इलाज शुरू हुआ, पर वही हल। दूसरे को दिखाया, उसने भी कुछ दिन इलाज किया और चिकित्सक महोदय ने विश्वास दिलाया कि बच्चे इस बार बिल्कुल ठीक हो जायेंगे। पर जैसी आशा थी; वही हुआ। बच्चों पर कहाँ तक निगरानी रखते। बेचारे आइसक्रीम व कच्ची अमिया तो दूर; फ्रिज का पानी व आम तक खाने को तरस गये। इमली व बाजार की चाट तो बहुत दूर की बात थी। बच्चे न खायें तो बड़े क्या खाते?

फिर परिवार में सलाह हुई, कि किसी अन्य पद्धति का इलाज कराया जाय। चिकित्सक महोदय ने दवा के साथ-साथ एक लम्बा परहेज व दिन में 3 बार एक कड़वी दवा से गरारे करने की सलाह दी। एक दो दिन तो कार्यक्रम चला, फिर यह बच्चों पर अत्याचार-सा लगने लगा। अन्त में जब हर 4-6 दिन पर बुखार, खांसी-सर्दी आदि होने लगी तो निर्णय लिया कि दोनों का एक साथ आपरेशन कर डालना चाहिए। शायद लेखक के जीवन का यह सबसे बड़ा निर्णय था क्योंकि बच्चों के दादा-दादी, नाना-नानी किसी को सूचित नहीं किया गया। आप शायद विश्वास न करें परन्तु लेखक, पत्नी व बच्चे रात भर चिन्ता के कारण उछल कूद मचाते रहे। कभी मन मे आता कि आपरेशन न करवायें, कभी आता कि एक का ही करायें। कभी सोचते कहीं 'कुछ' हो गया तो? और इस 'कुछ' की कल्पन करके दिल बैठने लगता। बच्चे तब तक स्कूल में आ चुके थे व एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिया में "आपरेशन", 'एनेस्थीसिया', 'क्लोरोफार्म' 'ईथर' आदि पढ़ते, समझने की कोशिश करते पर सबका ध्यान उसी ओर था कहीं 'कुछ' हो गया तो।

बहरहाल दूसरे दिन आपरेशन हुआ और उसी दिन शाम को

डाक्टर ने वर्जित पदार्थों–आइसक्रीम, ठण्डा पानी आदि खाने पीने की छूट दे दी। यद्यपि घाव के कारण बच्चे अधिक खा नहीं सकते थे परन्तु तसल्ली बहुत थी। और फिर वही हुआ जो आधुनिक शल्य क्रिया की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। आज वही दोनों बच्चे 5½—5¾ फुट के हृष्ट-पुष्ट नौजवान हैं। इसके बाद से, न तो उन्हें खासी आई और न सांस ही फूली।

मेरे अन्य चिकित्सक बन्धु इस बात को अन्यथा न लें। लेखक स्वयं होम्योपैथी, प्राकृतिक चिकित्सा व योगासन का कायल है और इनसे होने वाले लाभों को परख चुका है। यहाँ कहने का तात्पर्य यही है कि चिकित्सा की सब विधियों की एक सीमा है और यदि चिकित्सक अपनी सीमायें जानता है तो वह रोगी के लिए अत्यन्त हितकारी है। शल्य क्रिया भी कोई जादू टोना नहीं है और न ही किसी अंग को केवल काटकर निकाल देना ही है। इस पर वृहद चर्चा हम बाद में करेगे।

इसी धारणा से यह पुस्तक जनसामान्य के लिए लिखी गई है और उन्हें कुछ साधारण सूचनाएँ देगी। यह पुस्तक किसी प्रकार के विशेषज्ञों के लिए नहीं है। यह केवल हिन्दी भाषी, हिन्दी प्रेमी जनसाधारण के लिए है ताकि वे विज्ञान की इस उपलब्धि के बारे में जान सकें और समझ सकें। यदि यह पुस्तक कुछ पाठकों की भ्रान्तियाँ व परेशानी कम करने में सहायक होती है तो लेखक अपने इस प्रयास को सफल समझेगा। अन्त में लेखक कृतज्ञ है अपने इष्ट मित्रों, खासतौर पर श्री जियाउल इस्लाम उस्मानी, श्री सुरेश चन्द्र उप्रेती व श्री गोविन्द नारायण का जिनके कारण यह पुस्तक आपके सामने प्रस्तुत है।

—डॉ. रमेश चन्द्र गुप्त

प्रस्तावना

आज के युग में जहाँ विज्ञान ने बहुत सी विनाशलीलाएँ करने की क्षमताएँ दी हैं, वहीं पर जीवन को सुखमय बनाने के लिए भी कुछ शक्तियाँ प्रदान की हैं। उनमें से कुछ हैं — आधुनिक शल्य चिकित्सा।

हममें से प्रत्येक व्यक्ति को कभी न कभी, अपने लिये, अपने परिवार, इष्टमित्रों या अन्य किसी परिचित के लिए इसकी शरण मे जाना ही पड़ता है। अत: एक प्रश्न यह उठता है कि शल्य क्रिया ही क्यों? कुछ लोग यह भी कहेंगे कि अब से 50 वर्ष पूर्व भी तो लोग बीमार होते थे,पेट में दर्द भी होता था, हड्डी भी टूटती थी और बच्चे भी पैदा होते थे। परन्तु तब तो इतनी शल्य क्रिया नहीं होती थी। परन्तु अब क्या स्वास्थ्य की अधिकांश समस्याओं का इलाज शल्य चिकित्सा ही है? क्या बीमारियाँ बढ़ गई हैं या उनका स्वरूप, लक्षण तथा जटिलतायें बढ़ गयी हैं? दोनों ही बातें सत्य हैं। एक ओर जहाँ जनसंख्या बढ़ी है मानव जाति की औसत आयु में वृद्धि हुई है, मातृ व शिशु मृत्यु-दर में कमी आई है; वहीं रोगों के स्वरूप, लक्षण व जटिलताओं में भी वृद्धि हुई है। मनुष्य पहले से अधिक स्वस्थ व दीर्घायु होता है, फिर इसके साथ बीमारियों का रूप, लक्षण व जटिलतायें क्यों बढ़ी हैं? यहाँ आप यह कहेंगे कि हमारा यह विवरण असत्य है क्योंकि भारत की जनगणना के हिसाब से पहले जबकि औसतन आयु 27 वर्ष थी; अब 42 वर्ष हो गयी है फिर यह कहना कहाँ तक सत्य है कि पहले आदमी

अधिक स्वस्थ और दीर्घायु था। दोनों ही बातें अपने-अपने स्थान पर सही हैं परन्तु विपरीत लगती हैं। औसत आयु में बढ़ोत्तरी हुई है इसमें कोई संदेह नहीं है और स्वास्थ्य हानि भी हुई है, यह भी सत्य है — इन दो विरोधात्मक प्रश्नों का उत्तर है कि अब बच्चा तथा माँ की मृत्यु दर मे भारी कमी हुई है। आप में से जो जीवन में 40-50 वर्ष देख चुके हैं — वे याद करें कि बचपन में कितने बच्चे जन्म होते ही अथवा प्रथम वर्ष में ही जीवन खो बैठते थे और फिर बच्चे के जन्म के समय कितनी स्त्रियों की जीवन लीला ही समाप्त हो जाती थी। उस जमाने में फिर महामारी मे कितने लोगों की मृत्यु लगभग एक समय पर ही हो जाती थी। प्लेग, चेचक, हैजा इत्यादि मे तो गाँव के गाँव साफ हो जाते थे। इन सब कारणों से औसतन जीवन कम हो जाता था। परन्तु अब जीवन में शायद ही यह बीमारियाँ सुनने को मिलें।

आखिर आपरेशन ही क्यों?

शल्य क्रिया अधिकांशतः जीवन रक्षा हेतु की जाती है। इस देश में शायद ही कोई गम्भीर बीमारी के बिना शल्य क्रिया के लिए तैयार हो। पाश्चात्य देशों में जहाँ जीवन जटिल, एकांगी व स्पर्धापूर्ण हो गया है, वहाँ पर कभी-कभी अस्पताल के स्वच्छ व ममतापूर्ण वातावरण में अपने आपको किसी न किसी बहाने प्रविष्ट कराकर बार बार शल्य क्रिया कराने को कोई मानसिक असन्तुलन वाला व्यक्ति मिल भी जाता है। परन्तु इस देश में अभी भी परिवार एक इकाई होने के कारण, परिवार के प्रत्येक सदस्य को स्नेह, प्रेम, वात्सल्य तथा अहं तुष्टि के काफी मौके मिल जाते हैं। साथ ही यहाँ अस्पताल का वातावरण इतना सुविधाजनक नहीं होता है कि मनुष्य अपने परिवार के स्थान पर अस्पताल को अधिक महत्व दे।

अधिकांश आपरेशन जो जीवनदायी या जीवन-रक्षा हेतु होते है। उनमें से कुछ दुर्घटना में अंग का क्षत-विक्षत होना, विशेष प्रकार की उदर पीड़ायें जैसे एपेन्डिक्स की सूजन आमाशय या आतों में छिद्र, प्रसव के समय बच्चे का साधारण रूप से जन्म न लेना आदि। इनमें समय की बड़ी महत्ता होती है। बीतने वाले एक-एक पल की देरी केवल शल्य क्रिया को जटिल से जटिलतम ही नही बनाती है बल्कि जीवन के लिए घातक हो सकती है। कुछ और अधिक विलम्ब हो जाने पर रोगी की मृत्यु की संभावनायें बढ़ती जाती हैं। इस तरह के रोगों के उपचार हेतु शल्य चिकित्सक की यही कोशिश रहती है कि शीघ्रातिशीघ्र शल्य क्रिया का सम्पादन कर लिया जाय। पर इसमें सबसे बड़ी बाधा रोगी अथवा उसके अभिभावको की राय न देना अथवा आमाशय में भोजन, द्रव पदार्थ आदि का होना है, इसके बारे में हम बाद में चर्चा करेंगे।

दूसरे प्रकार की शल्य क्रियाएँ उन रोगों की होती हैं जिनके बारे में यह आशा की जाती है कि वे दवा, सुई आदि की सहायता से ठीक तो हो सकते हैं परन्तु वे कठिन, लम्बे, खर्चीले एवं कष्ट साध्य होते हैं। साथ ही ऐसा भी होता है कि इसका अन्तिम परिणाम शल्य क्रिया की अपेक्षा खराब हो सकता है। जैसे कूल्हे की हड्डियो का टूटना, आमाशय के घाव आदि। इसमें प्लास्टर व दवाओं से इलाज तो हो सकता है परन्तु इसके परिणाम शल्य क्रिया की अपेक्षा कहीं अधिक खराब होते हैं अत: चिकित्सक चाहता है कि इनका उपचार शल्य क्रिया द्वारा ही हो। हाँ शल्य चिकित्सक को स्वयं ही निश्चय करना होगा कि अमुक रोगी के लिए शल्य क्रिया लाभकारी होगी या नहीं।

तीसरे प्रकार के आपरेशन मनुष्य को पीड़ा से बचाने अथवा

शरीर के किसी भाग के नष्ट हो जाने पर उस भाग को निकालने के लिए किये जाते हैं। पित्त की थैली, गुरदों तथा मूत्राशय में पथरी हो जाने पर पीड़ा असह्य होती है। सामान्य-सा दिखने वाला व्यक्ति पथरी के दर्द से तड़प उठता है, उसे हर मिनट नारकीय पीड़ा का आभास होता है। ऐसे में रोगी को पूरी तरह पीड़ा रहित करने का एक ही उपाय है कि शल्य क्रिया द्वारा केवल पथरी निकाल दी जाय या फिर अगर पित्त की थैली में सूजन है तो उसे भी निकाल दिया जाय। पथरी के साथ यदि एक गुरदा भी खराब हो गया तो गुरदे या उसका एक भाग बिना किसी नुकसान के निकाला जा सकता है। इसी प्रकार अगर किसी अंग में कैंसर हो गया है और उसके निकालने से जीवन हानि का भय नहीं है तो वह भाग शल्य क्रिया द्वारा निकाल दिया जाता है।

चौथे प्रकार के आपरेशन वे होते हैं जो शरीर के किसी अंग विशेष में कमी, कमजोरी अथवा कार्य में बाधा को पूरा करने अथवा ठीक करने के लिए किये जाते हैं। आपने देखा होगा कि कुछ बच्चे जन्म से ही टेढ़े पैर लिए पैदा होते हैं, कुछ के अंगो मे कुछ कमी होती है अथवा हृदय आदि में कुछ खराबी होती है। इसी प्रकार पेट की मांसपेशियों की कमजोरी के कारण आंत उतरने का हार्निया (Harnia) नामक रोग हो जाता है। शल्य क्रिया द्वारा इन कमियों को ठीक किया जाता है। इसी प्रकार कुछ नलिका विहीन ग्रन्थियाँ जैसे थायरायड, पैराथायरायड आदि शरीर की आवश्यकता से अधिक स्राव पैदा करते हैं तो शल्य क्रिया द्वारा इनकी बढ़ी हुई कार्यशीलता को कम किया जाता है।

पाँचवें प्रकार के आपरेशन वे होते हैं जिन्हें प्लास्टिक सर्जरी या रिकन्सट्रक्टिव सर्जरी के नाम से पुकारते हैं। जैसा कि नाम से

ही विदित होता है ये किसी दाग धब्बे कील झाई घाव जो अपने निशान शरीर के खुले भागों पर छोड़ गये हैं अथवा चेहरे या अन्य किसी अंग को कुरूपता दे रहे है — उनको मिटाने या कम कर देने के लिए किये जाते हैं। साथ ही कटी नाक, कान की मरम्मत या बनावट सुधारने में भी इस तरह की शल्य क्रिया सहायक होती है।

इसी में वे शल्य क्रियाएँ भी आती हैं जिनमें एक मांसपेशी के आहत हो जाने पर, (जैसा कि पोलियोमाइलाइटिस, स्नायु विकार अथवा कुष्ठ रोग में होता है) इसे दूसरी मांसपेशी के साथ जोड़ दिया जाता है ताकि दूषित अंग का कार्य पहले से अधिक सुचारु रूप से हो सके।

हमारे देश में जब विदेशों में कोई शल्य क्रिया का नाम तक नहीं जानता था, सुश्रुत जैसे महर्षियों ने इस संसार को कटी हुई नाक का शल्य कर्म करने की शिक्षा दी। यह अपने आप में बेमिसाल है। आज भी सम्पूर्ण विश्व महर्षि सुश्रुत की इस देन को आदर, प्रेम व श्रद्धा से अपनाता है।

शल्य क्रिया क्यों बड़ी?

आज से 50 वर्ष पूर्व जीवन की गति धीमी थी। यातायात अधिकांशत: पैदल या बैलगाड़ियों द्वारा ही होता था। गाँवों में रहने वाले प्रौढ़ लोग, (यदि अपना बचपन याद करें) बतायेंगे कि गाँव से 5-10 कोस दूर जाने वाला व्यक्ति सबको सूचित कर देता था कि वह अमुक दिन अमुक गाँव को जा रहा है ताकि संबंधित व्यक्ति उसे कुछ कार्य बता सके। यह सब करने में वह काफी गौरव महसूस करता था। उस समय यातायात के कारण लगने वाली चोटें नहीं के बराबर थीं। मुझे तो याद नहीं आता कि उस समय कोई

समुद्री यात्रा या वायुयात्रा के बारे में सोचता था। रेलगाड़ी का उपयोग भी अधिकतर थोड़ी दूर जाने के लिए ही होता था। धीरे-धीरे साइकिल आई और इसके साथ ही कुछ छोटे व साधारण किस्म के फ्रैक्चर। अब तो गाँव में भी मोटर सायकिल, स्कूटर, बस, ट्रैक्टर, ट्रक आदि यातायात के साधन बन गये हैं। पर इसके साथ न तो सड़कें ही ठीक बनी हैं और न यातायात के नियमों का पालन ही होता है और इसका परिणाम है इस देश में वाहनों के अनुपात में दुर्घटनाओं की बढ़ती संख्या। शायद आपको आश्चर्य होगा कि अपने देश में यातायात दुर्घटनायें और देशों से कहीं अधिक हैं — यद्यपि वाहनों की गति बहुत कम है।

आपरेशन की संख्या बढ़ने का एक कारण और भी है, वह है उचित निदान व इलाज। आज से कुछ वर्ष पूर्व जब गाँवों में चिकित्सीय सुविधायें उपलब्ध नहीं थीं; कितनी ही मातायें प्रसव पीड़ा में अपनी जान खो बैठती थीं। अधिकांशतः माँ व बच्चा दोनों ही नहीं बचते थे। इसका कारण था इलाज के रूप में होने वाली केवल झाड़-फूँक आदि। अब तो गाँव के पीर, पंडित, ओझा व सयाने लुप्तप्राय हो गये हैं। क्योंकि अब रोग का निदान भी हो सकता है और उपचार भी। पेट दर्द से मृत्यु का होना तो प्रत्येक गाँव में हुआ ही करता था और उसका कारण कहा जाता था — किसी प्रेत का पेट में घुस जाना। अब शायद प्रेत समाप्त हो गये हैं।

आपरेशन की संख्या बढ़ाने में राजनीतिक व सामाजिक जीवन भी काफी हद तक उत्तरदायी है। आज से कुछ वर्ष पूर्व आपस में झगड़ा होने पर प्रत्येक व्यक्ति अपने घर के मुखिया, ग्राम प्रधान, सरपंच या अन्य किसी मान्य व्यक्ति की सलाह लिया करता था जो सलाह के रूप में आदेश भी हुआ करता था। क्योंकि ऐसा

न करने पर उसको डर रहता था कि उसका सामाजिक निष्कासन कर दिया जायेगा। कितनी ताकत थी — उस समय किसी का हुक्का पानी बन्द करने में। लेकिन अब क्या कोई इसका आधुनिक संस्करण कर सकता है? इसका अर्थ यह हुआ है कि जरा-जरा सी बात में लाठी बल्लम तो छोटी बात हो गई है अब निकलते हैं — कट्टे व बम — जिसका अर्थ है जीवन की अधिक से अधिक क्षति। छोटे नगरों में बेशक कोई 17-18 वर्ष पूर्व तो ऐसी बाते होती ही नहीं थीं परन्तु अब तो हर अस्पताल भरा पड़ा है ऐसे व्यक्तियों से .....

शल्य क्रिया में वृद्धि का एक और कारण है संयुक्त परिवार का टूटना। पहले संयुक्त परिवार में एक ऐसे बच्चे का निर्वाह हो जाता था जिसका एक हाथ या पैर टूट कर टेढ़ा जुड़ गया है अथवा जन्म से ही टेढ़ा है। परिवार के लोग उसे अपने कर्मों का फल समझ कर स्वीकार कर लेते थे। तथा उस व्यक्ति का पालन पोषण आसानी से हो जाता था। आज संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। अब कौन तैयार है ऐसे बच्चे या युवक का भार उठाने के लिए।

अभी कुछ दिन पूर्व मेरे छोटे से छः वर्षीय भतीजे ने मुझे नई दिल्ली में प्रचलित कक्षा में बताई गई परिवार की नई परिभाषा सुनाई; उसे बताया गया था कि परिवार में पापा-मम्मी, भाई-बहन होते हैं। मेरे, उससे और भी सदस्यों के नाम पूछने पर उसने आगे बताया कि और भी हो सकते हैं। वे हैं बाबा, दादी, चाचा और बुआ, मैं उसका ताऊ हूँ। जब मैंने उससे ताऊ के बारे में पूछा तो बेचारा झेंप कर बोला कि हमारी टीचर जी ने तो ये बताया ही नहीं। आप शायद इसे हँस कर टाल दें अथवा कुछ मनगढ़न्त समझें पर यह सत्य है और यह इस बात का द्योतक है कि संयुक्त परिवार

प्रणाली का इस देश से लोप होता जा रहा है। कुछ समय पश्चात् हो सकता है कि परिवार की परिभाषा ही बदल जाये और सूक्ष्म हो जाये। ऐसे में कौन चाहेगा कि परिवार का एक भी सदस्य किसी भी प्रकार से अक्षम हो।

शल्य कर्म में वृद्धि का एक और कारण है और वह है ग्रामीण क्षेत्रों में आधुनिक उपकरणों का प्रयोग। आज से कुछ वर्ष पूर्व कुट्टी काटने की मशीन से हाथ कटने की बात एक दुःखद स्वप्न की तरह हो सकती थी। लेकिन अब इसी जिले में यह ले लेती है करीब 100 जीवन — इसी प्रकार है आटा चक्की, रूई धुनने की मशीन या पन-चक्की से चोटों का लगना। पहले इनकी सख्या नगण्य थी पर अब गांव में इनका बढ़ता हुआ उपयोग अब सैकड़ों अंगो व जीवन हानि के लिए उत्तरदायी है। पम्पिंग सेट या आटा-चक्की तो लग गई है परन्तु किसी ने यह समझने या बताने की कोशिश नहीं की कि इनके पास ढीले वस्त्रों में न जायें। धोती कुरता पहन, गले में गमछा लटका कर पहुँच गये दातून करते हुए ट्यूबवेल पर या पम्प के पास और नतीजा आप स्वयं सोच सकते है।

❑❑

शल्य कर्म

सामान्य विवरण

साधारण रोग अधिकांशतया स्वयं ही ठीक हो जाते है। पर कुछ रोगों के उपचार के लिए दवाओं के साथ शल्य कर्म अनिवार्य हो जाता है।

मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रतिक्रिया है कि वह उस काम को शीघ्र करने के लिए तैयार हो जाता है जिसमें उसे कम से कम कठिनाई या परेशानी हो। अगर सूजे टांसिल को मीठी गोली से ठीक करने की कोई सलाह दे तो व्यक्ति उसके लिए फौरन तैयार हो जायगा।

शल्य कर्म कब कराया जाय यह रोगी की शारीरिक व अन्य बहुत सी परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इसका निर्णय भी चिकित्सक ही कर सकता है। अधिकांशत: शल्य कर्म की आवश्यकता तब ही पड़ती है जब शरीर की रोगों से लड़ने की क्षमता खत्म हो चुकती है और औषधियों द्वारा उसे ठीक नहीं किया जा सकता है। इसके बारे में हम चर्चा पहले कर चुके हैं।

परन्तु यह भी एक सत्य है कि चिकित्सक द्वारा शल्य कर्म की सलाह देने के बाद शल्य कर्म न कराना या उसे टालना अत्यंत हानिकारक और कभी-कभी तो जान लेवा भी हो सकता है। शल्य कर्म की सलाह के बाद इसे न कराने के सम्भावित खतरे निम्न हो सकते है—

1. फोड़े का मवाद (पस) या पीप न निकलवाने से फोड़ा

बहुत समय तक न ठीक होगा तथा यदि स्वत: फूट कर बहता है तो उस स्थान पर नासूर हो सकता है। यह नासूर कभी तो बन्द हो जाता है और फिर कुछ दिन बाद फिर से मवाद देने लगता है। थोड़े दिनो नासूर का न बहना, रोगी और उसके अभिभावकों को भ्रम में डाल देता है। इसके अतिरिक्त अगर फोड़ा भी हो गया तो वह फोड़े के स्थान पर भद्दा सा दाग छोड़ सकता है। इसके अतिरिक्त मवाद का विष, रक्त संचार द्वारा पूरे शरीर में पहुँच सकता है और शरीर मे अन्य स्थानो में भी फोड़े हो सकते हैं। फोड़े का विष अन्तरागों व मस्तिष्क में पहुँच कर मृत्यु का कारण भी बन सकता है।

2. पकी हुई एपेन्डिक्स यदि समय पर न निकाली गई; तो फूट सकती है और पूरा विष पेट में फैल कर घातक परिणाम दे सकता है।

3. अधिक फूला हुआ पोता (हाइड्रोसील) यदि समय से शल्य चिकित्सा द्वारा न ठीक किया जाय तो उसमें मवाद पड़ने की सभावना रहती है अथवा पुरुष की जनन-शक्ति में बाधा पड़ सकती है।

4. उतरी हुई आंत (हार्निया) का यदि समय से शल्य क्रिया द्वारा उपचार न किया गया तो सम्भव है कि आंत फंस जाय। यदि इस स्तर पर रोगी शल्य कर्म से भागता रहा तो सम्भव है कि आंत उलट कर गल या सड़ जाय तथा सड़ने से उत्पन्न विष शरीर में फैल कर प्राणघातक हो जाय।

5. 50 वर्ष की आयु के बाद रात में पेशाब के लिए बार-बार उठना इस बात का द्योतक है कि पेशाब की थैली (Urinary bladder) के अन्दर स्थित प्रोस्टेट ग्रन्थि (Prostate Gland) की वृद्धि हो रही है। आरम्भ में तो इसमें परेशानी व कष्ट कम होता है

लेकिन अगर इसे बहुत दिनों के लिए टाल दिया जाय तो गुर्दे (वृक्क - Kidneys) के ऊपर बहुत जोर पड़ता है और शरीर में यूरिया (Urea) नामक विष बढ़ जाता है और फिर जब पेशाब रुक जाता है तो शल्य चिकित्सक को रोगी के जीवन के हेतु एक आपरेशन के स्थान पर दो आपरेशन करने पड़ते हैं।

6. यदि शरीर के अन्दर आंत उलझ जाय तो भी आंत सड़कर मनुष्य के लिए घातक परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकती है।

7. खराब व नष्ट दाँत यदि न निकाला जाय तो उसकी जड़ में सूजन (इन्फेक्शन) हो सकती है जो अन्य दाँतों के लिए हानिकारक तो है ही — रक्त द्वारा शरीर के अन्य भागों में सूजन, तथा जोड़ों इत्यादि के दर्द का कारण भी बन सकती है।

8. सूजा हुआ या पका हुआ टान्सिल भी रोगो का स्रोत बन जाता है और बार-बार जुकाम, खाँसी, सर्दी, व नजले का कारण बन जाता है।

9. कैंसर एक ऐसा रोग है जिसे अभी तक असाध्य समझा जाता है। पर यदि इसकी जानकारी होते ही चिकित्सक की सलाह ले ली जाय तो शल्य कर्म से कुछ रोगियों को ठीक किया जा सकता है। विलम्ब होने से जीवन को और खतरा हो जाता है तथा यह इतना फैल जाता है कि शल्य कर्म बिल्कुल असम्भव हो जाता है।

10. नवजात शिशु में कुछ संरचनात्मक दोष जन्म से ही पाये जाते हैं। अधिकतर ऐसे दोष शल्य क्रिया द्वारा ठीक किए जा सकते हैं। ऐसा न करने पर शिशु की आयु कम हो जाती है। कुछ दोष तो ऐसे होते हैं कि एक सप्ताह से पूर्व ही शिशु की मृत्यु का कारण बन सकते हैं, जैसे — ट्रैकियो-इसोफिजियल फिस्चुला (Fistula) जिसमें श्वांस नली तथा भोजन नली के बीच में छेद

रहता है और दूध सांस की नली में चला जाता है। इम्परफोरेटेड ऐनस (मल द्वार का न होना या बन्द होना) आदि–आदि।

11. यदि गर्भवती माता की श्रेणि मेखला (Pelvic Girdle) सकीर्ण हो या गर्भस्थ शिशु का आकार बड़ा हो तथा बहुत से अन्य कारणों से भी कभी–कभी शल्य क्रिया की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे में शल्य क्रिया न करने अथवा देर से करने में शिशु व माता दोनों की ही जान का खतरा रहता है।

12. टूटी हुई हड्डी को ठीक स्थिति में जुड़ना अनिवार्य है। कभी–कभी हड्डी को ठीक स्थिति में लाने के लिए शल्य कर्म आवश्यक हो जाता है। इस स्थिति में शल्य कर्म न करवाने से सम्भव है कि हड्डी गलत स्थिति में जुड़ जाय जिससे अंग विशेष टेढ़ा हो जाय या हड्डी ही न जुड़े। इन परिस्थितियों में मनुष्य जीवन भर के लिए अपंग हो सकता है। हड्डी बैंठवाने का यह कार्य चिकित्सक के द्वारा ही किया जाना चाहिए क्योंकि किसी नीम हकीम द्वारा हड्डी के बैठाये जाने में सम्भव है कि हड्डी गलत स्थिति में जुड़े अथवा उक्त अंग की किसी महत्वपूर्ण रक्त वाहिनी को नुकसान पहुँचे जिससे रक्त संचार में बाधा पड़े और अंत में उस अग को कटवाना पड़े। कुहनी व घुटने के पास टूटी हड्डियों में यह खतरा विशेष रूप से रहता है। अधिकांशतया यह देखा गया है कि हड्डी पर चोट लगने पर लोग हड्डी बैठाने वाले पहलवान, चिकवा अथवा कसाईयों (Butchers) के पास जाते हैं। वे सोंचते है कि ये व्यक्ति विशेष रूप से हड्डी बैठाने में दक्ष होते हैं। टूटी हड्डियों को मालिश द्वारा बैठवाना खतरनाक हो सकता है।

13. अन्य भागों में होने वाले फोड़े की भाँति हड्डी में भी मवाद उत्पन्न हो जाता है। यदि शल्य क्रिया द्वारा इस मवाद को न

निकाला गया तो हड्डी अन्दर ही अन्दर खोखली हो जाती है और जरा से झटके या दबाव द्वारा टूट सकती है। ऐसी हड्डी के टूटने पर फिर जुड़ने की संभावना कम होती जाती है।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि जब भी चिकित्सक शल्य कर्म की सलाह दे तो रोगी या उसके परिवार को समझना चाहिए और किसी भी दशा में उसे टालने अथवा उससे भय खाने की आवश्यकता नहीं है। चिकित्सक आपका मित्र है और वह जो भी सलाह देता है आपके हित के लिए ही होती है।

संज्ञाहरण

सञ्ज्ञाहरण तीन प्रकार का होता है ।

आधुनिक शल्य क्रिया में सबसे बड़ा योगदान है संज्ञाहरण अथवा एनेस्थीसिया का। आधुनिक शल्य क्रिया चाहे छोटी हो जैसे फोड़े फुंसी अथवा परिवार नियोजन के लिए नसबन्दी या मस्तिष्क और दिल का आपरेशन, मनुष्य की आदि काल से ही ये इच्छा रही है कि उसका जीवन पीड़ा रहित रहे और शल्य क्रिया भी पीड़ा रहित हो। आरम्भ में शल्य क्रिया के लिए आज के मापदण्डों के अनुसार बड़े ही विचित्र तरीके अपनाये जाते थे।

सभ्यता के आरम्भ में मनुष्य को भोजन पाने के लिए जंगलो मे शिकार अथवा आखेट करना पड़ता था। इसी प्रकार अन्य पशुओ से रक्षा के लिए उसे प्रयत्न करना पड़ता था और इससे स्वाभाविक था चोट का लग जाना। फिर सभ्यता के साथ-साथ ही मानव ने कुटुम्ब, कबीला, जाति आदि बनाई और फिर उसी के साथ इसमे जुड़े-लड़ाई, युद्ध इत्यादि। इन सब में भी मनुष्यों को चोटें लगती थीं। इसके साथ ही मनुष्य ने ढूंढ़ी व पाई पेड़ की पत्तियाँ, छाले, जड़े तथा पशु जीवन से प्राप्त अनेक पदार्थ-जिनमें से कुछ में पायी जाती थी पीड़ा हरने की शक्ति। पुराने ग्रन्थों के अनुसार इन वस्तुओं मे आते हैं, भांग व उससे संबन्धित अन्य पदार्थ। तेरहवीं शताब्दी तक भांग, अफीम तथा इनसे संबंधित वस्तुओं को संज्ञाहरण के काम में लाया जाता रहा है। भांग के नशे में या अफीम के नशे मे अधिकांश शल्य कर्म सम्पादित किये जाते थे। चूंकि इन वस्तुओं की

दी जाने वाली मात्रा के मापन (Standardization) की कोई विधि नहीं थी अत: या तो मात्रा कम होने के कारण पीड़ा होती थी या मात्रा अधिक होने पर रोगी को लम्बे समय के लिए नींद या बेहोशी होती थी — इसमें कभी-कभी रोगी की मृत्यु होने की सम्भावना रहती थी।

(1) **स्थानीय संज्ञाहरण अथवा सुन्न करना** (Local Anaesthesia)

कोकीन या उसके नवनिर्मित पदार्थ अपना असर शरीर के अंगों में सुई द्वारा प्रविष्ट कराने पर करते हैं और उनका असर उसी स्थान पर होता है अथवा उस क्षेत्र की स्नायु नलिका को अवरुद्ध करके उसके क्षेत्र को सुन्न कर देते हैं। इसका सबसे बड़ा लाभ रोगी को अपनी स्वाभाविक अवस्था में रखना है, केवल वह क्षेत्र ही जिसको सुन्न किया गया है प्रभावित रहता है और इसलिए इसमें अधिक सावधानी रखने की आवश्यकता नहीं होती है। इतना अवश्य है कि सुन्न होने में कुछ समय लगता है। इसलिए शल्य चिकित्सक को दवा का असर आने के लिए 10-15 मिनट तक रुकना पड़ता है। यहाँ यह बात भी ध्यान रखनी चाहिए कि यह संज्ञाहरण केवल उन व्यक्तियों के लिए किया जाता है जिन्हें यह दवा माफिक हो और जो स्वभाव से कुछ दृढ़ हों और ये दृढ़ता शरीर की दृढ़ता से कोई सम्बन्ध नहीं रखती है। हो सकता है कि शरीर से कमजोर दिखने वाला व्यक्ति मन से बहुत दृढ़ हो और वह स्थानीय संज्ञाहरण से अपना बड़ा से बड़ा आपरेशन करा ले। वहीं पर मैं काफी ऐसे व्यक्तियों को जानता हूँ जो शरीर से पूर्ण हृष्ट-पुष्ट होते हुए भी एक सुई लगवाने से डरते हैं और अगर उन्हें अपना दाँत भी निकलवाना हो तो वे पूर्ण संज्ञाहरण ही चाहेंगे। जहाँ तक हो सके इसे बच्चों और स्त्रियों में नहीं करना चाहिए। बच्चों से यह आशा करना कि वे

स्थानीय संज्ञाहरण मे अपनी शल्य क्रिया करा लेंगे बड़ी असंभव सी बात है। स्त्रियाँ भी स्वभाव से बहुत भावुक होती हैं और अधिकांशत इस प्रकार के संज्ञाहरण में शल्य क्रिया नहीं करा पाती हैं।

स्थानीय संज्ञाहरण (Local Anaesthesia) के बारे में एक चुटकुला चिकित्सकों के बीच बड़े प्रसन्न हुए अपने भाषण में कहा कि यहाँ के चिकित्सक बड़े अच्छे हैं क्योंकि वे लोकल चीजों का ही प्रयोग करते है बाहर से नहीं मँगाते तथा (Foreign) विदेशी चीजों की तो कोई आवश्यकता है ही नहीं, यही अस्पताल ऐसा है वरना हर जगह तो डाक्टर बाहर की दवा और विदेशी उपकरणो की ही बात करते हैं। उनके लिए लोकल या स्थानीय का मतलब था —उसी नगर या शहर की वस्तुएँ —जबकि चिकित्सक का आशय शरीर के भाग विशेष से था।

(2) क्षेत्रीय संज्ञाहरण (Regional Anaesthesia)

यह अधिकांशत: रीढ़ की हड्डियों में कटि या कमर के बीच मे प्रतिष्ठित सुषुम्ना नाड़ी में कोकेन वर्गीय पदार्थों के प्रवेश के कारण होता है जो क्षेत्रीय संज्ञाहरण कहलाता है। इस संज्ञाहरण मे शरीर के निम्न भाग अर्थात् दोनों पैर तथा पेट के समस्त शल्य कर्म किये जा सकते हैं। इसका सबसे बड़ा लाभ है कि रोगी पूर्ण चेतन अवस्था में रहता है और यदि वह चाहे तो अपना आपरेशन होता हुआ देख सकता है। प्राय: तीव्र इच्छा शक्ति वाले लोग ही अपना आपरेशन देख सकते हैं। वैसे सामान्यतया संज्ञाहरण विशेषज्ञ रोगी की आँख बन्द कर देते हैं। मजेदार बात यह है कि कुछ रोगियो से जब संज्ञाहरण के बाद पूर्ण आपरेशन के बारे में पूछा गया तो उन्हे विश्वास ही नही हुआ कि उनका आपरेशन हो गया है। यदि रोगी और शल्य चिकित्सक चाहे तो आपरेशन के समय पूर्ण वार्तालाप

का आनन्द उठा सकत है और रोगी पूर्ण चेतन अवस्था मे अपनी हड्डियों पर लगी हथौड़ी की चोटों को भी उसी प्रेम से मान लेता है कि हथौड़ी न होकर किसी फूल से उसे छुआ गया हो।

श्रीमती कमला देवी की जांघ की हड्डी टूट गई थी तथा डाक्टरों के बार-बार प्रयत्न करने पर भी हड्डी के भाग यथा स्थान नहीं आ रहे थे और फिर प्लास्टर लगाने से भी उन्हें कष्ट होता। डाक्टरों ने निर्णय किया कि आपरेशन करके उनकी जांघ की हड्डी में विशेष प्रकार की लौह धातु की नली डाल दी जाय। क्षेत्रीय संज्ञाहरण में उनका आपरेशन हुआ। शल्य-चिकित्सक तथा रोगी आपस में बात-चीत करते रहे; घर-गृहस्थी, सामयिक, राजनीति तथा ईश्वर नाम की चर्चा होती रही तथा हड्डी के ऊपर हथौड़ी भी चलती रही, सब प्रसन्न। कहाँ तो कमला जी को डर था कि पता नहीं क्या होगा और कहां ऐसा वातावरण? रात्रि का सारा भय जाता रहा था तथा आपरेशन कक्ष की रोशनी में कमला सब देख रही थी — अन्त में जब शल्य चिकित्सक ने पूछा कि क्या आपरेशन शुरू करें तो कमला हँस कर बोली, "डाक्टर साहब, आपरेशन तो हो चुका है।"

यह सब क्षेत्रीय संज्ञाहरण का कमाल था। आपरेशन समाप्त कर पट्टी बांध दी गई और कमला आपरेशन कक्ष के बाहर। 3-4 घंटों के बाद ही पैरों मे पुन: पूरी ताकत आ गई। श्रीमती कमला के टांके जब 10 दिन बाद काटे गये तो उन्हें लगा कि इसमें आपरेशन से अधिक पीड़ा हुई। हालांकि टाँके काटने में कोई पीड़ा नहीं होती है और बिना किसी संज्ञाहरण के ही टांके निकाले जाते हैं। अब तो इस विधि में इतने परिवर्तन आ गये हैं कि दवा की किस्म (Type) तथा उसकी मात्रा के हिसाब से यह निश्चित हो जाता है कि क्षेत्रीय संज्ञाहरण कितने घंटे तक किस भाग पर प्रभावी रहेगा।

संज्ञाहरण के कारण ही आधुनिक शल्य क्रिया उतनी कष्टदायक नहीं रह गई है। व्यक्ति के अन्तर्मन की भावना के कारण ही दर्द अधिक महसूस होता है।

(3) सम्पूर्ण संज्ञाहरण (General Anaesthesia)

प्राय: इस प्रकार के संज्ञाहरण के बारे में जनसमुदाय मे सबसे अधिक भ्रांतियाँ हैं। अमुक रोगी की मृत्यु इसलिए हुई कि उसे उसकी ताकत से अधिक क्लोरोफार्म दे दिया गया। अधिकांश रोगी एव उनके सम्बन्धी शायद आपरेशन से उतना नहीं डरते, जितना कि सम्पूर्ण संज्ञाहरण से। अक्सर वे पूछते हैं कि डाक्टर साहब क्लोरोफार्म देगे क्या? आज के युग में क्लोरोफार्म से सम्पूर्ण संज्ञाहरण समाप्त हो गया है और इस देश में शायद ही किसी चिकित्सालय में यह इस्तेमाल किया जाता हो। फिर भी शायद जन मानस में क्लोरोफार्म से उत्पन्न हुई भ्रांतियाँ अभी भी नहीं निकल पायी हैं। क्लोरोफार्म की जगह अब पूर्ण निश्चेतना ईथर तथा अन्य दवाओं या गैसों द्वारा पैदा की जाती है और अब तो केवल निश्चेतना ही नहीं बल्कि श्वांस को भी कृत्रिम रूप से चालू रखा जा सकता है ताकि शरीर के अंगों पर आपरेशन की समस्त क्रियाओं का कम से कम बुरा असर पड़े। इस युग में केवल श्वांस प्रक्रिया ही कृत्रिम नहीं की जाती है, वरन् हृदय एव फुफ्फुस दोनो की क्रियाओं को भी अलग रूप से चालू रखा जाता है। यह एक बड़ा ही रोचक और लोमहर्षक कार्य है जिसमे अब अपने देश के इसी विधि में पारंगत विशेषज्ञ कार्य कर रहे है।

पहले शल्य चिकित्सक ही प्राय: सब काम किया करता था; पहले उसने स्थानीय या क्षेत्रीय संज्ञाहरण किया और फिर आपरेशन शुरू किया अथवा सम्पूर्ण संज्ञाहरण किया और यह काम किसी नर्स या कम्पाउन्डर को देकर शल्य कर्म आरम्भ कर दिया। इसमे

जीवन हानि के तथा कष्ट के काफी मौके रहते थे। शल्य चिकित्सक शल्य कर्म के दौरान पूछता रहता था कि 'सब ठीक है' परन्तु अब यह कार्य विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है। वे पूरा प्रयत्न करते हैं कि शल्य कर्म बिना किसी खतरे या कष्ट के ठीक प्रकार से सम्पन्न हो जाय।

शल्य कर्म कब?

शल्य कर्म तीन प्रकार के होते हैं—

(अ) पूर्व निश्चित शल्य कर्म (Planned or Cold Surgery)

(ब) आकस्मिक शल्य कर्म। (Emergency Surgery)

(स) इन दोनों के बीच की स्थिति।

(अ) पूर्व निश्चित शल्य कर्म –

कुछ रोगों में शल्य कर्म आवश्यक होता है पर यह अनिवार्य नही कि रोग की जानकारी होते ही तत्काल शल्य कर्म कर दिया जाय। जैसे हाइड्रोसील, साधारण हार्निया, टॉन्सिल की सूजन, प्रोस्टेट ग्रन्थि बढ़ना आदि। इन रोगों में यदि रोगी की आंतरिक शारीरिक स्थिति सामान्य नहीं है तो उसके सामान्य हो जाने की प्रतीक्षा की जा सकती है। परन्तु इसके विपरीत बिना किसी विशेष कारण के शल्य कर्म में देर करने से खतरे उत्पन्न हो सकते हैं जिन पर पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है। शल्य कर्म का मौसम के साथ जोडा जाना बिल्कुल तर्क संगत नहीं है। किसी भी मौसम में कोई भी शल्य क्रिया की जा सकती है। पर लोग सोचते हैं कि शल्य कर्म जाड़ों मे ठीक रहता है। शायद वे सोचते हैं कि इस मौसम में शरीर की शक्तियाँ तेज रहती हैं, भूख भी अधिक लगती है और पलंग पर लेटे रहने में भी कोई अधिक कष्ट नहीं होता है। जहाँ तक लेटने का प्रश्न है वह सुख तो जाड़ों में नहीं होता है। गर्मी व बरसात में (वह भी बिना बिजली के) पलंग पर लेटना बड़ा ही कष्टकारक होता है। यदि इन कारणों से जाड़ों में आपरेशन कराना है तो ठीक है लेकिन

इस कारण से आपरेशन को अधिक समय तक नहीं टालना चाहिए

(ब) आकस्मिक शल्य कर्म –

कुछ रोग या परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं कि शल्य क्रिया अविलम्ब आवश्यक हो जाती है। किसी भी कारण से शल्य कर्म मे देर करने से रोगी विकलांग हो सकता है या जीवन खतरे में पड़ सकता है। उदाहरण के लिए उलझी या फटी हुई आँत, आमाशय से रक्तस्राव, घाव का फटना, स्वाँस नली में फँसा पैसा या अन्य पदार्थ, अन्दर या बाहर के रक्तस्राव, फँसा हुआ हर्निया, पथरी के कारण मूत्र मार्ग में रक्त का आना, प्रसव के समय फँसा हुआ शिशु, अस्थिभंग के साथ घाव (Compound Fracture) आदि। इन परिस्थितियों में शीघ्रातिशीघ्र शल्य क्रिया आवश्यक है। हाँ — इतना अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि शल्य क्रिया की तैयारी कर लेनी चाहिए। जैसे यदि रोगी कुछ समय पूर्व भोजन कर चुका है तो कुछ समय के लिए शल्य क्रिया स्थगित कर दी जाती है। शरीर से अधिक रक्त निकलने पर शल्य चिकित्सक इस कमी को उसी वर्ग के रक्त आरोहण (Blood Transfusion) द्वारा पूरा करने की कोशिश करते हैं। अगर जल्दी है तो रक्त के विकल्प प्लाज्मा (Plasma, Devtravan, Haemocele) अथवा नमक अथवा नमक-शर्करा (Saline या Glucose Saline) का घोल देकर रोगी की शल्य क्रिया को निरापद बनाने का प्रयत्न किया जाता है।

(स) पूर्व निश्चित व आकस्मिक के बीच की स्थिति –

इस बीच की स्थिति में शल्य क्रिया आवश्यक तो होती है परन्तु इसके तुरन्त किये जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। जैसे वृद्धावस्था में कूल्हे की हड्डी का टूटना। इसमें रोगी को कुछ दिनो में शल्य क्रिया के लिए तैयार कर लिया जाता है। यहाँ यह बात भी

निश्चित है कि इस उम्र के रोगी को स्वास्थ्य सुधारने के लिए अधिक समय नही दिया जाना चाहिए अन्यथा आयु के कारण हड्डी टूटने से दूसरे खतरे पैदा हो जायेंगे।

शल्य कर्म हेतु रोगी को अस्पताल में भरती करना

पूर्व निश्चित शल्य कर्म के लिए रोगी को निर्धारित तिथि से काफी समय पूर्व अस्पताल में भर्ती कर देना चाहिए। इससे चिकित्सक को रोगी की शारीरिक, मानसिक व सामाजिक-आर्थिक (Socio-economic) स्थिति का अच्छी तरह से ज्ञान हो जाता है —साथ ही आवश्यक जाँचों का समय भी मिल जाता है। फलस्वरूप चिकित्सक योजनाबद्ध ढंग से कार्य कर सकता है जिससे रोगी को कम से कम परेशानी उठानी पड़ती है और कम से कम समय व न्यूनतम खर्च मे काम निबट जाता है। जब चिकित्सक शल्य क्रिया की राय दे तो यह मालूम कर लेना चाहिए कि रोगी को कब चिकित्सालय में भर्ती कराना है। यह सोचना कि शल्य क्रिया के लिए कुछ घण्टे पहले अस्पताल में जाकर ही शल्य क्रिया करा लेंगे, कभी-कभी दु:ख का कारण बन जाती है। अक्सर देखा जाता है कि अधिकांशत: शल्य क्रिया मे दुर्घटनायें केवल इसी कारण से होती है। यहाँ पर एक घटना विशेष की चर्चा उचित होगी।

एक उच्चाधिकारी के पुत्र को टॉसिल के बार-बार सूज जाने का रोग था। पिता पहले टालता रहा। फिर गरारे, कुल्ले, होम्योपैथिक, बायोकेमिक दवायें, गोलियाँ, इंजेक्शन आदि सब कुछ हुआ परन्तु टॉसिल में मवाद (Pus) पड़ गया और यह निश्चित था कि शल्य क्रिया आवश्यक होगी। एक दिन उक्त अधिकारी की अपने एक मित्र और सुयोग्य व अनुभवी शल्य चिकित्सक से क्लब मे मुलाक़ात हुई। अधिकारी ने आपरेशन की चर्चा अपने मित्र शल्य

13225
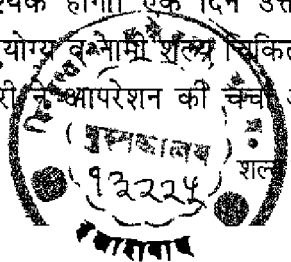
चिकित्सक से की। उन्होंने भी सोचा कि टॉसिल का आपरेशन 10 मिनट का है—कल सुबह हो जायेगा और दूसरे दिन अधिकारी महोदय अपने पुत्र के साथ प्रातःकाल अस्पताल पहुँच गये। शल्य चिकित्सक की आज्ञा हुई और मूर्छा प्रारम्भ कर दी गई। और क्या हुआ—बच्चे का जीवन गया, शल्य चिकित्सक की नौकरी गई, मान सम्मान गया और अधिकारी-चिकित्सक की दोस्ती-यारी समाप्त, एक दूसरे को मरने-मारने को तैयार। कुछ लोग इसे भाग्य की बात भी कह सकते है। परन्तु यह अवश्य है कि बच्चे का यदि उचित परीक्षण कर लिया गया होता तो शायद परिस्थिति दूसरी ही होती। कम से कम चिकित्सक पर शल्य क्रिया के प्रति गम्भीर न होने का अथवा Rash होने का आरोप तो न लगता या शायद बच्चे की मृत्यु टल जाती।

शल्य क्रिया कोई बहुत ही खतरनाक क्रिया नहीं है, लेकिन यह सत्य है कि नियमों का पालन किया जाना आवश्यक है, "**सावधानी हटी, दुर्घटना हुई**" ही मूल मंत्र है। आजकल शल्य क्रिया सुरक्षित है अब रोगी को सुरक्षित बनाना है। **दुर्घटनाओं से रोगी को बचाना ही शल्य चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य रह गया है।**

आकस्मिक शल्य कर्म हेतु रोगी को अस्पताल में तुरन्त भर्ती कर देना चाहिए। शीघ्र ही शल्य कर्म के लिए आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध कर देना चाहिए। अधिकांशतः अस्पतालों में शल्य क्रिया के लिए आवश्यक वस्तुओं की कमी रहती है। होनी तो नहीं चाहिए परन्तु यह सत्य है कि काफी वस्तुओं की कमी रहती है। कभी-कभी रोगी को रक्त की भी आवश्यकता होती है ऐसे में जिस मित्र या सम्बन्धी का रक्त रोगी के रक्त से मेल खाता हो उसे तुरन्त रक्त दान करना चाहिए। अधिक रक्तस्राव से रोगी की मृत्यु हो सकती है। ठीक समय पर रक्त मिल जाने पर रोगी को मृत्यु के मुख से बचाया

जा सकता है — प्राय: 20 वर्ष से 60 वर्ष के बीच का कोई भी व्यक्ति जिसे कोई संक्रामक रोग न हो; रक्तदान कर सकता है। कौन व्यक्ति रक्तदान के लिए उपयुक्त है इसका निर्णय रक्त कोष का चिकित्सक कर सकता है।

अक्सर यह देखा जाता है कि रोगी के अभिभावक रक्त देने मे हिचकिचाते हैं। गरीब से गरीब व्यक्ति भी यह चाहता है कि उसके रोगी को रक्त कहीं और से दिया जाय। रक्त कोई ऐसी वस्तु तो है नहीं कि उसकी फैक्ट्री लगी हो, विदेश में आयात किया जा सके या जानवरो को मार कर प्राप्त किया जा सके। रक्त तो मानव का ही चाहिए और रोगी के अभिभावकों, मित्रों, पड़ोसियों और जान पहचान वालों से बढ़कर और कौन हो सकता है जो रोगी का शुभचिन्तक हो।

आकस्मिक या आपातकालीन शल्य क्रिया (Emergency surgery) में इतने सब नियमों का पालन प्राय: सम्भव नही होता है। आत फटने पर (Intestinal perforation) या गम्भीर चोट लगने पर या गम्भीर अस्थि भंग (Compound fracture) होने पर या किसी और कारण से (जिसका वर्णन पहले आ चुका है-आदि कारणो से) यदि शल्य क्रिया करनी पड़ती है तो उन नियमों का कठोरता से पालन नहीं किया जा सकता क्योंकि जीवन रक्षा ही सर्वोपरि होती है। उस समय यह सोचना कि एनीमा लगा है या नहीं, भोजन अल्पावशेष (Low Residue Diet) का रहा है या नहीं आवश्यक नही होता है। अधिकांशत: लोग खाने अथवा भोजन का अर्थ पूरे भोजन से लगाते हैं। यदि किसी से पूछा जाय कि उसने भोजन कब किया है तो वह वही बतायेगा कि उसने दाल, चावल, रोटी आदि इतने घंटे पहले लिया है। संज्ञाहरण के कारण यह आवश्यक है कि आमाशय बिल्कुल खाली हो तथा रोगी ने दूध, फल, चाय, शर्बत,

पानी आदि कुछ भी न लिया हो क्योंकि संज्ञाहरण के प्रश्चात वमन या कै हो सकती है। यदि आमाशय में कोई भी ठोस अथवा द्रव वस्तु है तो उसका रोगी की श्वांस नली से होकर फेफड़ों में पहुँचना व श्वांस अवरोध (Respiratory obstruction) पैदा करना काफी सम्भव है। जैसा कि हम पहले भी बता चुके हैं कि सांस या श्वास में अवरोध से मृत्यु भी सम्भव है। अत: रोगी या अभिभावक को चाहिए कि वे चिकित्सक को विस्तार मे जानकारी दें। जैसे कि मुख्य भोजन प्रात: 10½ बजे, चाय 11½, पान 12½ बजे, पानी 1 बजे और सुर्ती 2 बजे। इस तरह के पूरे विवरण दिये जाने पर संज्ञाहरण करने वाला चिकित्सक व शल्य चिकित्सक यदि आवश्यकता समझेंगे तो (Stomach) पेट में नली डाल कर आमाशय में उपस्थित पदार्थों को निकाल लेंगे तथा संज्ञाहरण के दौरान व उसके बाद विशेष सावधानियाँ लेंगे। यह भी देखा गया है कि जहाँ (Stomach) आमाशय सामान्यत: 2½–3 घंटे में खाली हो जाता है वहीं चोट लगने पर या किसी गम्भीर रोग के कारण 6 से 8 घंटे ले लेता है।

आपात्कालीन शल्य क्रिया (Emergency Surgery) में रोगी की शल्य क्रिया के स्थान की सफाई प्राय: संज्ञाहरण के पश्चात् की जाती है। ऐसा करने में रोगी को कष्ट कम होता है क्योंकि जिन परिस्थितियों में ये (Emergency Surgery) की जाती है, उसमे सूजन, पीड़ा, दर्द इत्यादि अधिकतर होती है और उस स्थिति मे सफाई, साबुन–पानी से धोना तथा बाल या रोयें बनाना कष्टदायक होता है।

प्रयोगशाला परीक्षण

इस कर्म के पूर्व कुछ प्रयोगशाला परीक्षण (Laboratory Test) आवश्यक या जरूरी होते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं —

(अ) रोग के निदान हेतु किये जाने वाले परीक्षण

इनसे निम्न बातों का पता चलता है।

1. क्या रोगी सचमुच अमुक रोग से पीड़ित है?
2. क्या रोग शल्य कर्म द्वारा ठीक होने की अवस्था में है?
3. किस भाग में शल्य क्रिया करनी है?
4. किस प्रकार की शल्य क्रिया करनी है?

एक्सरे परीक्षण (X-ray Examination)

अलग-अलग रोगों के लिए अलग-अलग परीक्षण होते हैं। इनमे एक्सरे व अन्य बहुत से परीक्षण शामिल हैं।

अधिकांश रोगों मे एक्सरे परीक्षण आवश्यक होता है। कुछ रोगो (हड्डी, फेफड़े के रोग) मे तो साधारण एक्सरे से काम चल जाता है लेकिन काफी रोगों में विशेष प्रकार की दवा देकर एक्सरे किया जाता है जैसे गुरदे व मूत्राशय के रोगों में नस द्वारा दवा देकर समय-समय पर एक्सरे लिए जाते है। उनसे गुर्दे की पथरी आदि ही नही, उनके कार्यों के बारे में भी पता चल जाता है इसी प्रकार पित्त की थैली (Gall Bladder) के रोगों में या आंतों की बीमारी में दवा खिलाकर अथवा अनीमा लगाकर एक्सरे किये जाते हैं। यह काम विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है।

इन सबके अतिरिक्त अब तो नयी प्रकार की एक्सरे की विधियाँ जिनमें इमेज इन्टेन्सिफायर (Image Intensifier) तथा कम्प्यूटराइज्ड टोमोग्राफी (Computerized Tomography) इत्यादि हैं - शरीर के अन्दर के रोगों का पूरा-पूरा विवरण लिया जा सकता है।

इस पुस्तक में रोगी के लक्षण, निदान तथा परीक्षणों का विशद वर्णन करना तर्कसंगत न होगा पर अगर पाठकों को यह पुस्तक पसन्द आई तो दूसरी पुस्तक में सामान्य रोगों की चर्चा

करेंगे आजकल निदान के भी आधुनिक उपकरण दिन प्रति दिन बनत जा रहे हैं जिससे रोगों के निदान में काफी सहायता मिल रही है।

(ब) परीक्षण जो यह बताते हैं कि रोगी शल्य कर्म के योग्य हैं या नहीं

1. रक्त परीक्षण – खून की जाँच (Blood Examination)

इसमें विशेष रूप से हीमोग्लोबिन प्रतिशत, श्वेत रक्त कणिका गणना, (T.L.C., D.L.C.) लाल रक्तकण पतन दर (E.S.R.) अति आवश्यक हैं।

हीमोग्लोबिन प्रतिशत से पता चलता है कि रोगी में खून की कितनी मामा है और यदि कमी है तो वह किस प्रकार की है — क्या वह शरीर में लौह धातु की कमी के कारण है अथवा रक्त बननें मे सहायक अन्य पदार्थों में एनजाइम्स (Enzymes) की कमी के कारण। इसके साथ ही रक्त परीक्षण से पता चलता है कि रोगी को खून चढ़ाने की आवश्यकता है अथवा नहीं और यदि है तो किस मात्रा में।

श्वेत रक्त कणों की गणना से शरीर में रोगाणुओं के होने या न होने का संकेत मिलता है। साथ ही यह भी मालूम होता है कि रोगी का सम्पूर्ण संज्ञाहरण या निश्चेतन किया जा सकता है या नही।

जीवित शरीर में यह एक नियम है कि शरीर में रोगों के लड़ने की शक्ति होती है। आकाश में, वायु में, जल में, खाद्य पदार्थों मे रोग को पैदा करने वाले कीटाणु मौजूद हैं। वे साँस द्वारा, भोजन द्वारा तथा शरीर में चोट से घाव होने पर प्रविष्ट हो जाते हैं और उनके साथ ही सुर–असुर का युद्ध शुरू हो जाता है — कीटाणु शरीर में द्रुतगति से 1 से 2, 4 से 16 के अनुपात में बढ़ते हैं और रक्त के श्वेत कण (White Blood Corpuscles) उनसे लड़ने को तैयार। इसी प्रकार रक्त का (Fibrinogen) कीटाणुओं की घेराबन्दी

के लिए तैयार — इस युद्ध में मरे हुए कीटाणु तथा श्वेत कण से ही पीब (Pus) या मवाद बनता है। यह प्रक्रिया तब तक चालू रहती है जब तक ये रोगाणु शरीर की प्रतिरोधात्मक शक्ति से नष्ट न हो गये हों या फिर इस शक्ति के साथ दवाओं ने भी उन्हें नष्ट किया हो या फिर फोड़ा या तो अपने आप फूटकर या नश्तर, चीरा (Incision) से निकाल न दिया गया हो।

लाल रक्त दर पतन दर बताती है कि रोग सक्रिय अवस्था मे है या नहीं।

40 वर्षोपरान्त रक्त में शकर व यूरिया की मात्रा का परीक्षण भी आवश्यक हो जाता है।

यदि रोगी में यकृत (लिवर-Liver) के कमजोर होने का कोई लक्षण पाया जाता है तो यकृत कार्य परीक्षण आवश्यक हो जाता है। इसमें सीरम बिलीरूबिन प्रमुख हैं।

इन सभी परीक्षणों के लिए लगभग 10 मि०ली० रक्त की आवश्यकता पड़ती है।

शल्य कर्म से पूर्व यह भी ज्ञात कर लेना आवश्यक है कि रोगी को अत्यधिक रक्तस्राव की बीमारी तो नहीं है।

रोगी का रक्त ग्रुप भी ज्ञात होना चाहिए। यदि रक्त-दान की आवश्यकता हो तो दाता के रक्त से रोगी के रक्त का मिलान करके उसे 4^0 से 8^0 सेन्टीग्रेड ताप पर सुरक्षित रखना चाहिए।

2. मूत्र परीक्षण

मूत्र में प्रोटीन; शकर या रोगाणुओं की उपस्थिति के लिए परीक्षण आवश्यक होता है।

मधुमेह के रोगी के मूत्र में शकर जाती है। मधुमेह में रक्त मे शर्करा अधिक मात्रा में होती है। क्योंकि पैन्क्रयाज (Pancreas)

नामक ग्रन्थि से इन्सुलिन नामक रस (Hormone) कम बनता है। यह रस शरीर में शर्करा को नियमित करता है — आँतों से उसका पचना, यकृत में उसका भण्डारण होना तथा माँस पेशियों में कार्य सचारण के लिए ऊर्जा देना है। इन्सुलिन के शरीर में कम होने के कारण मूत्र के साथ शर्करा बाहर निकल जाती है तथा (Tissues) मे अधिक शर्करा होने के कारण से मधुमेह में संक्रमण (Infection) की आशंका रहती है तथा रोगी के संज्ञाहरण व शल्य कर्म दोनो ही भिन्न तरीके से करने पड़ते हैं। अत: रोगी के मूत्र में शकर की उपस्थिति से चिकित्सक सावधान हो जाता है।

मूत्र में प्रोटीन की उपस्थिति गुर्दे की बीमारी की ओर संकेत करती है। शल्य कर्म व संज्ञाहरण से पूर्व गुर्दे की बीमारी का उपचार आवश्यक होता है अन्यथा घातक परिणामों की आशका बनी रहती है।

रोगी के मूत्र में रोगाणुओं की उपस्थिति यह संकेत करती है कि शल्य कर्म से पूर्व मूत्र विसर्जन तन्त्र को ठीक करना चाहिए।

3. मल परीक्षण

इससे ज्ञात होता है कि रोगी की आंतों में किसी प्रकार के कीड़े तो नहीं है। कभी-कभी रक्ताल्पता का कारण रोगी की ऑतो मे पाया जाने वाला एक कीड़ा होता है जिसे एंकाइलोस्टोमा (Ankylostoma) कहते हैं। रक्त क्षीणता को दूर करने के लिए इससे छुटकारा पाना आवश्यक है।

मूत्र व मल के परीक्षण के लिए यह आवश्यक है कि चिकित्सक के निर्देशानुसार ये रोगी द्वारा स्वच्छ पात्र में तथा वांछित मात्रा में रक्खे जाये तथा पात्र पर रोगी का नाम, पता, वार्ड नम्बर व पलंग नम्बर आदि साफ-साफ लिखे होने चाहिए। ❐❐

शल्य क्रिया के प्रकार

शल्य क्रिया से पूर्व साधारण शल्य कार्य

प्राय: शल्य क्रिया से पहले व बाद में विभिन्न प्रकार के द्रव्य नस या शिरा (vein) द्वारा दिए जाते हैं। इसे (Intravenous Administration) या लघु रूप में I.V. कहते है। चूँकि इसमें द्रव्य बूँद-बूँद करके चढ़ाया जाता है अत: इसे ड्रिप या I.V. Drip के नाम से भी पुकारा जाता है। इसमें दिए जाने वाले द्रव्य निम्न हैं—

(क) नमक का घोल (Saline solution या Ringers solution)

रक्त का परासरण दाब (Osmotic Pressure) नमक के 0.9% घोल के बराबर होता है। जब यह घोल दिया जाता है तो यह रक्त के बराबर ही परासरण दाब रखता है। जिसका अर्थ यह हुआ कि यह घोल रक्त के साथ परिभ्रमण करने लगता है। यदि नमक का घोल 0.9% से अधिक सान्द्रता का होगा तो कोशिका के बाहर के स्थान (Extra-cellular space) का द्रव्य खींच लेगा जिससे कोश सिकुड़ कर पास आ जाएँगे और वे अपना कार्य ठीक से नहीं करेंगे। इसी प्रकार यदि नमक घोल 0.9% से कम सान्द्रता का होगा तो वह रक्त के परिभ्रमण से निकल कर Intra-Cellular Space मे चला जाएगा और इससे भी कोशों के सामान्य कार्यों में बाधा पड़ेगी।

(ख) शर्करा का घोल (Glucose Solution)

5% ग्लूकोज का घोल भी रक्त के Osmotic Pressure के बराबर होता है, इसका मुख्य कार्य शरीर को शक्ति देना है।

(ग) शर्करा व नमक का घोल

यह 0.9% नमक व 5% शर्करा के घोल का मिश्रण होता है।

(घ) अन्य घोल

कुछ विशेष प्रकार के घोल जो विशेष अवस्थाओं में दिए जाते हैं —

1. सिर में चोट लगने के बाद मूर्छा आने पर शर्करा का 10% से 50% सान्द्रता का घोल। इसका मुख्य कार्य मस्तिष्क मे उत्पन्न सूजन को कम करना है।

2. आमाशय में (Rhyle's Tube) नली डाल कर यदि अम्ल या अन्य द्रव्य निकाले जा रहे हैं तो उनकी कमी को पूरा करने वाले द्रव्य के घोल।

वे सब घोल परिभ्रमण में लगभग 6 से 8 घण्टे तक रहते है और यदि वृक्क (गुर्दा या Kidney) ठीक कार्य करते होते है तो वे मूत्र द्वारा बाहर निकल जाते हैं। द्रव्य का कुछ भाग सांस व पसीने द्वारा भी बाहर निकल जाता है।

चूँकि लाल रक्त कण जिनमें हीमोग्लोबिन पाया जाता है इन घोलों में नहीं होते, अतः ये आक्सीजन या कार्बन डाई आक्साइड गैसों के कोशों तक लाने या ले जाने का कार्य नहीं करते। अत. ये केवल उन्हीं दशाओं में दिए जाते हैं जब रक्त में द्रवीय पदार्थों की मात्रा घट जाती है — जैसे आंतों के फँस जाने पर।

(ङ) रक्त के स्थान पर प्रयुक्त घोल

अग्नि से जल जाने पर पूर्ण रक्त के साथ प्लाज्मा अधिक नष्ट होता है। यह वह भाग है जो जले भाग से बराबर रिसता रहता है। अतः यह आवश्यक है कि रोगी को रक्त के साथ प्लाज्मा भी दिया जाय। प्लाज्मा एक विशेष विधि से रक्त को सुखा कर बनाया जाता

है फिर उसे नमक के घोल में मिलाने पर प्लाज्मा तैयार होता है। यह अधिकांशत: युद्धकाल में या विशेष गम्भीर अवस्था में प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त कृत्रिम रूप से भी प्लाज्मा में मिलता-जुलता पदार्थ तैयार किया गया है इसमें से मुख्य हैं Haemocel तथा Dextravan। चूँकि इनमें भी हीमोग्लोबिन न होने के कारण आक्सीजन ले जाने की क्षमता नहीं होती है अत: इनका प्रयोग भी गम्भीर अवस्था में रक्त का आयतन बढ़ाने में ही किया जाता है। यह शरीर मे केवल 12 से 48 घण्टे तक रहता है ताकि इस बीच सम्पूर्ण रक्त का प्रबन्ध किया जा सके, जिसका विकल्प रक्त के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

(च) सम्पूर्ण रक्त :- सम्पूर्ण रक्त के बारे में हम आगे लिखेगे।

ये सारे द्रव्य नसों द्वारा ही दिये जाते हैं और प्राय: कोहनी के सामने वाले भाग में पायी जाने वाली नस जिसे (Anticubital Vein) कहते हैं; में दिए जाते हैं। परन्तु प्राय: देखा जाता है कि इसमें रोगी को हाथ हिलाने में कष्ट होता है। अत: यह अच्छा समझा जाता है कि ये द्रव्य टखने के अन्दर के भाग में पाई जाने वाली नस जिसे Long Saphenous Vein कहते हैं; में दिये जाएँ।

गम्भीर अवस्था में प्राय: ये शिरायें नहीं दिखाई पड़ती है अथवा टटोली नहीं जा सकती हैं। यही समय होता है जब अधिक सख्या व मात्रा में द्रव्य व दवायें शीघ्र से शीघ्र शिरा में दिये जाये। अत: इस दशा में शिरा को एक छोटे से शल्य कर्म द्वारा खोलते है और उसमें पॉलीथीन की पतली सी नली डाल देते है। फिर इसी नली द्वारा द्रव्य शरीर में पहुँचाये जाते हैं।

इस छोटे से शल्यकर्म को कट-ओपेन (Cut Open) के नाम से जाना जाता है।

2. बायोप्सी (Biopsy)

यह भी एक साधारण-सी परन्तु अत्यन्त उपयोगी शल्य क्रिया है। यह प्राय: रोग के निदान को पूर्ण करने के लिए की जाती है। इसके द्वारा कैन्सर का निदान ही नहीं वरन् उसकी किस्म व गम्भीरता का भी पता लगाया जाता है। इस रोग की चर्चा हम आगे करेंगे। किसी भी कैन्सर का बड़ा शल्यकर्म करने से पहले - चाहे निदान कितना ही स्पष्ट क्यों न हो — शल्य चिकित्सक इस प्रक्रिया की सहायता लेते हैं और स्थानीय संज्ञाहरण (Local Anaesthesia) मे अर्बुद का एक छोटा सा टुकड़ा निकाल कर रोग निदानी चिकित्सक (Pathologist) के पास भेजते हैं; जो खुर्दबीन आदि की सहायता से कैन्सर की किस्म, गुण व घातक प्रभावों का पता लगाता है। यद्यपि यह शल्य क्रिया बहुत छोटी है परन्तु आवश्यक है। क्योंकि इसी जाँच की सहायता से, चाहे कितनी ही नगण्य सख्या में क्यों न हो (जैसे 10,000 में 1 बार) नुकसान पहुँचाने वाली शल्य क्रिया (Mutilating Surgery) से बचा जा सकता है।

चिकित्सक लक्षण, जाँच, रक्त परीक्षण, एक्सरे इत्यादि से इतना तो जान लेता है कि अर्बुद अमुक जाति (रोग की भी किस्मे व जातियाँ हैं) का है लेकिन कौन-सा — यह Biopsy से ही पता चलेगा। इसी प्रकार शल्य क्रिया के बाद निकाला गया, शरीर का एक भाग भी इसी प्रकार की जाँच के लिए रोग निदानी चिकित्सक (Pathologist) के पास भेजा जाता है। हो सकता है ऊपर से साधारण-सा दिखाई देने वाला अंग गम्भीर अर्बुद या किसी अन्य बीमारी की सूचना दे सके।

दूसरी स्थिति में Biopsy तब की जाती है जब किसी और निदान पर शल्य क्रिया प्रारम्भ की गई, परन्तु मिला कैन्सर-वह भी

इतना बढ़ा हुआ कि उसका पूरा निकलना सम्भव ही नहीं, तो फिर एक टुकड़ा निकाल कर ही शल्य क्रिया समाप्त कर दी जाती है।

3. रीढ़ की हड्डी से द्रव निकालना (Lumber Puncture)

ये भी एक प्रकार का शल्य कर्म है, जिसमें रीढ़ की हड्डी मे उपस्थित द्रव निकाला जाता है। इस द्रव को सेरीब्रो–स्पाइनल फ्लूड (Cerebrospinal fluid C.S.F.) कहते हैं। यह प्राय: मस्तिष्क की चोट, फालिज तथा बेहोशी के रोगो में किया जाता है। यह एक छोटा सा शल्य कर्म है जो स्थानीय संज्ञाहरण के पश्चात किया जाता है।

इसका दूसरा उपयोग क्षेत्रीय संज्ञाहरण (Regional Anaesthesia) में, रीढ़ व मस्तिष्क के रोगों में तथा विशेष प्रकार के एक्सरे करने में होता है।

❐❐

शल्यकर्म से पूर्व अस्पताल मे रोगी का परीक्षण

रोग का इतिहास :-

अस्पताल या वार्ड मे भर्ती रोगी का विस्तृत परीक्षण आवश्यक होता है। इसके लिए चिकित्सक या नर्स, रोगी के कष्टों के विस्तृत इतिहास के बारे में रोगी या उसके सम्बन्धी से जानकारी प्राप्त करते है। चिकित्सक द्वारा पूछे गये प्रत्येक प्रश्न का रोगी को पूर्ण ईमानदारी से तथा विस्तारपूर्वक उत्तर देना चाहिए। अपने कष्टो के अलावा अपने भोजन, धूम्रपान या मदिरापान की भी विस्तृत रूप से जानकारी देनी चाहिए। इन सबका रोगी के शल्य कर्म व संज्ञाहरण (बेहोशी) पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। जिस रोग के निदान हेतु रोगी अस्पताल में भरती हुआ है या यदि भूतकाल में रोगी को इसी बीमारी या अन्य किसी बीमारी का शिकार होना पड़ा है, तो इसकी जानकारी भी रोगी को देनी चाहिए।

शारीरिक परीक्षण :-

रोग के इतिहास की जानकारी के बाद चिकित्सक द्वारा रोगी का शारीरिक परीक्षण किया जाता है। चिकित्सक के लिए यह आवश्यक है कि वह न केवल रुग्ण भाग का अपितु सारे शरीर का परीक्षण करे। रोगी को चिकित्सक की आज्ञानुसार स्वेच्छा से अपना परीक्षण करवाना चाहिए। यदि चिकित्सक को लज्जा के कारण सम्पूर्ण परीक्षण न करने दिया गया तो शल्य कर्म के समय या उसके बाद रोगी के लिए गंभीर परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती है।

उदाहरण के लिए, यदि किसी वृद्ध पुरुष के मलमार्ग की जॉच न की गई तो शल्यकर्म के बाद, रोगी के मूत्र विसर्जन में बाधा उत्पन्न हो सकती है तथा सम्भव है कि उसके उपचार हेतु एक और

शल्यकर्म करना पड़े।

रोगी के मित्रों, सम्बन्धियों के कुछ कर्त्तव्य

1. अस्पताल के रोगी के सम्बन्धी व घनिष्ठ मित्र रोगी से नियमित सम्पर्क करते रहें।

2. रोगी व सम्बन्धियों द्वारा अस्पताल और वार्ड के नियमों का अक्षरश: पालन किया जाय।

3. रोगी को निर्देशित व समुचित भोजन मिलता रहे।

4. शल्यकर्म से पूर्व रोगी को कोई चिन्ताकारक बात न बतायी जाय और न कोई शोक सूचना ही दी जाय। रोगी को पूर्ण मानसिक शान्ति रहे। आपरेशन के बारे में बढ़ी-चढ़ी, सुनी-सुनाई तथा मनगढन्त बातें न कही जायँ।

5. रोगी से भयावह व निराशापूर्ण बातें न करें। रोगी से आशावादी व आत्मविश्वास बढ़ाने वाली बातें कही जाएँ।

6. आवश्यकता से अधिक लोग रोगी से मिलने न आएँ।

7. सोते हुए रोगी को न जगाएँ।

8. मानसिक अशान्ति व अनिद्रा की सूचना चिकित्सक को दें।

9. दवाएँ निर्देशानुसार समय से खिलाएँ।

10. वार्ड व अस्पताल को साफ सुथरा रखें । इससे न केवल देखने में ही अच्छा लगता है, अपितु संक्रमण होने की सभावना भी कम हो जाती है।

11. दवा, आक्सीजन रुई, पट्टी इत्यादि का प्रबन्ध चिकित्सक की सहायता से कर दें ।

12. चिकित्सक व उसकी टीम पर पूरा विश्वास रखें। वे आपकी सहायता के लिए हैं —परन्तु आप उन्हें बिना कारण परेशान न करें। □□

शल्य कर्म से पूर्व निर्देश

पूर्व नियोजित शल्यकर्म

(अ) भोजन सम्बन्धी निर्देश :–

1. शल्य कर्म से पूर्व रोगी को भोजन–अल्पता (Malnutrition) से ग्रस्त नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा हो तो भोजन अल्पता का निदान शल्य कर्म से कम से कम 2 सप्ताह पूर्व हो जाना चाहिए, ताकि रोगी का स्वास्थ्य ठीक हो जाए।

2. रोगी को शल्य कर्म से 4 दिन पूर्व से ही अल्पावशेष भोजन अर्थात् ऐसा भोजन लेना चाहिए जिससे कम मात्रा में मल बने जैसे दूध, फल, फलों का रस, उबली सब्जियाँ आदि। यह आतों से संबंधित शल्य कर्म के लिए अत्यधिक आवश्यक है।

3. जब तक किसी कारण से पानी वर्जित न हो रोगी को प्रचुर मात्रा में जल पिलाना चाहिए। एक स्वस्थ प्रौढ़ व्यक्ति को गर्मी के मौसम में 3 लीटर या अधिक जल प्रतिदिन पीना चाहिए।

4. शल्य कर्म से 6 घंटे पूर्व से भोजन ही नहीं, बल्कि दूध, चाय यहाँ तक कि पानी भी वर्जित है। इस नियम के उल्लंघन से बेहोशी के समय आमाशय (पेट) में उपस्थित खाद्य पदार्थ वमन के साथ बाहर आने लगता है तथा बेहोशी की हालत में श्वास नली द्वारा फेफड़ों में पहुँच सकता है। इससे कभी तो तुरंत ही दम घुटने से रोगी की मृत्यु हो सकती है। और यदि मृत्यु न हुई तो 'न्यूमोनाइटिस' नामक घातक बीमारी हो सकती है जो बाद में रोगी की जान ले सकती है।

(ब) दैनिक कर्म सम्बन्धी निर्देश :–

शल्य कर्म के पूर्व यह आवश्यक है कि रोगी की आँते साफ हों। इसके लिए रोगी को प्रतिदिन नियम से मल त्याग करना चाहिए। यदि रोगी को कब्ज की शिकायत हो तो चिकित्सक से इसका इलाज कराना चाहिए। रोगी को शल्य कर्म से एक सप्ताह पूर्व से हल्का लेक्जेटिव दिया जा सकता है। यदि आवश्यक हो तो आपरेशन से 2 दिन पूर्व रोगी को प्रतिदिन एक एनीमा दिया जा सकता है। शल्य कर्म के दिन सुबह का एनीमा अनिवार्य होता है इससे बडी आत की सफ़ाई हो जाती है। परिणामतः शल्यकर्म के पश्चात् आँते अच्छी तरह क्रिया–शील हो जाती हैं।

(स) विश्राम व निद्रा सम्बन्धी निर्देश :–

शल्य कर्म से पूर्व रोगी को पूर्ण शारीरिक विश्राम मिलना चाहिए इसके लिए रोगी को 24 घंटे में कम से कम 8 घंटा सोना चाहिए किन्तु चिकित्सालय में भर्ती रोगी को प्रायः ऐसी नींद नही आती। इस परिस्थिति में चिकित्सक शल्य कर्म की पूर्व संध्या को किसी निद्रा लाने वाली दवा का आदेश देता है। रोगी का चित्त सर्वथा शान्त रहना चाहिए।

(द) बच्चों से सम्बन्धी निर्देश :–

छोटे बच्चों में या आकस्मिक शल्य कर्म से पूर्व रोगी की शिरा में सुई लगाकर नली द्वारा ग्लूकोज या अन्य पदार्थों का घोल चढ़ाया जाता है। इससे रोगी के शरीर में जल की कमी नहीं होने पाती तथा उर्जा भी प्राप्त होती है। संज्ञाहरण के समय तो नली द्वारा ग्लूकोज का घोल चढ़ाना आवश्यक होता है। नस या शिरा में लगाई जाने वाली सुइयाँ इसी नली के माध्यम से लगाई जा सकती है।

(य) त्वचा की सफाई सम्बन्धी निर्देश :-

यदि रोगी इस स्थिति में हो कि शल्यकर्म से पूर्व स्नान कर सके तो अवश्य कर लेना चाहिए। शल्य कर्म के दिन प्रातः हल्के गर्म पानी व साबुन से स्नान करना अच्छा रहता है। यदि स्नान सम्भव न हो तो नर्स या रोगी के सम्बन्धी को चाहिए कि मुलायम कपड़े या तौलिए को हल्के गर्म पानी में भिगो कर रोगी के शरीर को पोछ दें। जिस भाग पर शल्य क्रिया होनी है उस भाग पर स्पिरिट का लेप कर देना चाहिए। शल्यकर्म की पूर्व संध्या को उक्त भाग के तथा आस-पास के आपरेशन में आधी छाती से लेकर जाँघो के ऊपरी भाग तक तथा लिंग के चारों ओर के बालों को साफ कर देना चाहिए। बालो की सफाई इस भाँति करनी चाहिए कि एक भी रोम न छूटा रह जाय और त्वचा में भी खरोच न आये। त्वचा मे खरोंच से संक्रमण या इन्फेक्शन के खतरे बढ़ जाते हैं। चूँकि बालो की जड़ों में रोगाणुओं का बाहुल्य रहता है अतः शल्य कर्म के घाव को पकने से बचाने के लिए बालों का हटाना अनिवार्य है। बाल साफ करने के बाद त्वचा की पुनः सफाई करनी चाहिए। कुछ चिकित्सालयो मे शल्यकर्म की पूर्व संध्या को चिकित्सक द्वारा उस अंग की सफाई करके पट्टी बाँध दी जाती है जिससे अंग पुनः गंदा न होने पाए।

(र) शल्यकर्म हेतु शल्य कक्ष में स्थानान्तरण :-

शल्य कर्म से कुछ समय पूर्व रोगी को शल्य कक्ष मे स्थानान्तरित कर दिया जाता है जिससे शल्य कक्ष के नये वातावरण से रोगी परिचित हो सके और उसका कौतूहल कम हो जाए। स्थानान्तर से पूर्व रोगी को स्नान करवा कर रोगी को शल्य कक्ष के विशेष कपड़े पहना देने चाहिए। रोगी के पैरों में स्वच्छ या नये मोजे पहना देने चाहिए और बालों को तौलिया या टोपी से बाँध देना

चाहिए। रोगी के साथ के लोगों का शल्य कक्ष में प्रवेश वर्जित है।

(ल) शल्य कक्ष में रोगी :-

शल्य कर्म के लिए रोगी को विशेष कमरे में ले जाया जाता है। आपने प्राय: देखा होगा कि शल्य कक्ष में सभी व्यक्ति— डाक्टर, नर्स तथा अन्य कर्मचारी एक विशेष प्रकार या रंग के कपड़े पहने होते हैं, चाहे यह कमीज, बुशर्ट हो या पैन्ट, पाजामा। इसी प्रकार वे टोपियां तथा मुँह पर विशेष प्रकार का कपड़ा-मुखौटा या मास्क लगाये रहते हैं यह अधिकांश उसी प्रकार का होता है जैसा कि जैन साधु लोग लगाये रहते हैं। जूतों की जगह शल्य कक्ष की विशेष चप्पलें रहती हैं, इन सब का कारण होता है कि शल्य कर्म पूरी सफाई के साथ हो, किसी तरह रोगाणु शल्य घाव मे न पहुँचे। अधिकांशत: घाव में रोगाणु किसी भी सावधानी में कमी आने पर ही पहुँचते तथा बढ़ते हैं। रोगाणु को इन परिस्थितियो मे घाव में सूजन, (Inflammation) तथा पीव-पस-मवाद पैदा करने की सारी सुविधायें मौजूद हैं, क्योकि रोगी की प्रतिरोधात्मक शक्ति कम होती है, घाव होता है, घाव में रक्त जमा होता है तथा अन्दर के टांके (Internal Stitches) एक विशेष प्रकार की ताँत (Catgut) के बने होते हैं जो मानव शरीर के लिए विजातीय (Foreign) है और शरीर इन्हें आसानी से ग्रहण नहीं करता है। ऐसी परिस्थितियो मे शल्य चिकित्सक और उसकी टीम (Surgical Team) का यह पुनीत कर्त्तव्य हो जाता है कि रोगाणुओं को शल्य कर्म घाव तक न पहुँचने दें। इसके लिए रोगी की त्वचा की सफाई ऊपर लिखी सावधानियों के साथ तथा शल्य क्रिया में आने वाले तमाम उपकरणो एव औजारों का (Sterilization) जरूरी है। आज से लगभग 60 वर्ष पूर्व तक यह मान लिया जाता था कि शल्य कर्म में रोगाणु तो

आयेंगे ही और इसलिए सर्जरी (Surgery) प्राय (Antiseptic प्रकार की थी अर्थात् जो सूजन, मवाद या पस पड़ गया है उसे नष्ट करना था परन्तु अब शल्य क्रिया में प्रयत्न किया जाता है कि रोगाणु शल्य स्थान तक पहुँच ही न पाये, और इसी प्रकार से विशेष क्रियायें तथा सावधानी की जाती है। अब शल्य क्रिया (Aseptic) हो गयी है। इसीलिए आपरेशन के समय काम आने वाले औजार, कपड़े इत्यादि विशेष प्रकार से कीटाणुरहित किये जाते हैं तथा शल्य कक्ष की प्रत्येक क्रिया एक विशेष प्रकार की दक्षता के साथ की जाती है। यहाँ हम इतना और स्पष्ट कर दें कि शल्य क्रिया एक टीम का कार्य (Team work) है और उसमें प्रत्येक का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। यह सत्य है कि इस टीम का मुखिया शल्य चिकित्सक होता है लेकिन सभी का अलग-अलग कार्य है। उदाहरण के लिए हम कहें कि शल्य चिकित्सक चाहे कितना ही निपुण क्यों न हो, अगर उसके औजार, उपकरण, कपड़े इत्यादि अगर रोगाणुविहीन (Sterilized) नहीं है तो सारी शल्य क्रिया बेकार ही नहीं, जीवन-घाती भी हो सकती है। इसी प्रकार यदि निश्चेतक (Anaesthetist) निश्चेतना अगर ठीक प्रकार से न दे अथवा सहायक नर्स अपना कार्य ठीक तरह सम्पादित न करे तो रोगी को लाभ के स्थान पर नुकसान हो सकता है। अधिकांश शल्य चिकित्सक शल्य कक्ष को मंदिर या पूजा के स्थान के बराबर मानते हैं। यह वह स्थान है , जहाँ जीवन की रक्षा जीवन को कम कष्टमय या उसे सुखमय बनाने का प्रयत्न किया जाता है। जीवन की रक्षा करना चिकित्सक का कर्त्तव्य है और रोगी एवं उसके अभिभावकों, मित्रों से आशा की जाती है कि शल्य चिकित्सक के कार्य में सहायता दें।

❑❑

कैन्सर व शल्य क्रिया

मानव शरीर के हर अंग में यह विलक्षण शक्ति मौजूद है कि आवश्यकता पड़ने पर अपने नष्ट कोशों का फिर से निर्माण कर ले। जीवित शरीर में कोश टूटते व बनते रहते हैं। बचपन में कोश टूटते कम हैं, व बनते अधिक हैं, इसीलिए बच्चा बड़ा होता है। युवावस्था मे कोशों का टूटना व बनना लगभग बराबर होता है और वृद्धावस्था मे शरीर के कोश बनते कम और टूटते अधिक हैं। इसी कारण से वृद्धावस्था में रोग के लक्षण उत्पन्न होते हैं। इनके अलावा यदि शरीर के किसी भाग में किसी कारण से जैसे चोट, घाव अथवा विष से कोष नष्ट हो जाते हैं, और यदि यह हानि एक सीमा तक ही हुई है, तो शरीर उन नष्ट कोशों को फिर से बना लेता है और केवल उतने ही कोश बनाता है; जितने की आवश्यकता होती है। अर्थात् यदि शरीर में कोई घाव हो गया है तो केवल उतने ही कोश बनेंगे जितना घाव भरने के लिए पर्याप्त हैं, उससे अधिक नहीं।

परन्तु कभी-कभी कोशों के निर्माण की प्रक्रिया, शरीर की आवश्यकतानुसार न होकर मनमाने व अनियमित तरीके से होने लगती है, तथा कोशों की संख्या गुणित रूप में बढ़ती ही जाती है, रुकती नहीं है; यद्यपि शरीर को इनकी कोई आवश्यकता नहीं होती है। इसी प्रकार के कोशों को अर्बुद या कैन्सर के रूप में जाना जाता है।

यह एक ऐसा रोग है जिसका अभी तक समुचित इलाज सम्भव नहीं हो पाया है। अर्बुद प्रायः दो प्रकार के होते हैं —

1. साधारण अर्बुद या (Benign Tumour)

2. घातक अर्बुद या (Malignant Tumour)

साधारण अर्बुद

ये सीधे-साधे अर्बुद हैं जो अपने आकार के कारण लक्षण पैदा करते हैं। जैसे कि यदि आकार बड़ा हो या वे किसी महत्वपूर्ण अग के आस-पास हों तो उस पर दबाव डालकर जैसे रक्त नलिकाओं तथा स्नायु तन्तुओं पर दबाव डालकर अपने लक्षण प्रकट करते हैं। या फिर नलिका विहीन ग्रंथियों के रस या हारमोन के अधिक पैदा होने के कारण लक्षण पैदा करते हैं। थायरॉयड ग्रन्थि के अधिक रस बनाने के कारण आँखों का बाहर निकल आना, हाथ-पैर में कम्पन्न तथा ताप से असहनीयता पैदा हो जाती है। इन अर्बुदों की एक बार सफल शल्य क्रिया के पश्चात् इनके तमाम लक्षण समाप्त हो जाते हैं और अधिकांशत: दोबारा नही उत्पन्न होते हैं। ये दूर के अंगों में अपने द्वितीयक (Secondaries) नहीं भेजते हैं।

घातक अर्बुद

इनमें कोशों का निर्माण बड़ी तेजी से होता है और ये न केवल अपने आकार वरन् विषैले द्रव्यों के पैदा करने के कारण घातक प्रभाव डालते हैं। ये देखने में चाहे छोटे ही क्यों न हों लेकिन रक्त नलिकाओं व लसिकाओं द्वारा अपना प्रभाव दूर-दूर तक पहुँचा देते हैं। ये प्राय: फेफड़ों में, अस्थियों में या यकृत (लीवर) मे अपने द्वितीयक (Secondaries) पहुँचा देते हैं। यह दुर्भाग्य ही है कि इन अर्बुदों में प्रारम्भ में कोई पीड़ा नहीं होती और रोगी इन्हे हानि रहित समझता है और जब तक लक्षण या पीड़ा पैदा होती है, तो अधिक देर हो चुकी होती है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बाते

महत्वपूर्ण हे

1. शरीर के किसी भाग में पीड़ा रहित गाँठ या गिल्टी का होना, खास तौर पर स्तन में।

2. जीवन के नियमित कार्यों में कोई परिवर्तन जैसे नियमित शौच वाले को कब्ज अथवा मल-मूत्र त्याग मे बाधा।

3. आवाज में बदलाव या स्वर में भारीपन अथवा ठीक न होने वाली खाँसी।

4. न ठीक होने वाला घाव।

5. अकारण रक्तस्राव अथवा Discharge।

6. कब्ज अथवा खाना खाने में कष्ट।

7. मस्सों, कील झाइयों के आकार की बढ़ोत्तरी या पीड़ा होना।

जब भी उपरोक्त लक्षण प्रगट हों, तो आवश्यक है कि चिकित्सक से सलाह ली जाय। हर प्रशिक्षित चिकित्सक यह जानता है कि इन अर्बुदों में कौन से साधारण हैं व कौन से घातक।

श्रीमती 'क' ने नहाते समय यह महसूस किया कि उनके बाये स्तन में मटर के दाने के बराबर एक छोटी-सी गाँठ है। गाठ पीड़ा रहित थी और किसी प्रकार का कष्ट नहीं देती थी। पन्द्रह दिन बाद उन्होंने उस गाँठ को थोड़ा बड़ा पाया लेकिन दर्द या अन्य कोई लक्षण नहीं था। पति से चर्चा की। पति को अपने दफ्तर आदि की ही काफी परेशानियाँ थीं। मामला टलता रहा। 3 माह बाद गॉठ काफी बड़ी हो गयी थी — लगभग 1 इंच के व्यास की। श्रीमती जी ने अपने परिवार व पड़ोस की अन्य स्त्रियों से चर्चा की। मुहल्ले के डाक्टर को दिखाया। तब तक गाँठ ने ऊपर वाली खाल को पकड़ लिया था — साथ ही बगल में भी गिल्टी उभर आयी थी।

डाक्टर ने शीघ्र ही आपरेशन की सलाह दी। श्रीमती जी ने सोचा कि बिना एक स्तन के स्त्रीत्व कैसा! देखने में कैसा लगेगा? लोग क्या सोचेंगे? और फिर जब कष्ट ही अधिक नहीं है तो क्यों न नीम हकीमों, ओझाओं आदि को दिखाया जाय।, ओझाजी ने सुनते ही फतवा दिया कि उनके पास ऐसे सैकड़ों रोगी आ चुके हैं और ठीक होकर हँसते खेलते गये हैं। उन्होंने कुछ इन्जेक्शन लगवाये (कानूनन वे इन्जेक्शन लगाने के अधिकारी नहीं थे परन्तु इस देश में सब कुछ चलता है) लेप दिया, झाड़, फूँक हुई, देवी देवताओं की मनौतियाँ मानी गयीं। जब हाथ मे सूजन आ गई और दर्द होने लगा; तो फिर भागे मुहल्ले के डाक्टर के पास—उसने फिर वही सलाह दी। किसी तरह से शल्य क्रिया की गई, जो शल्य क्रिया शुरू में अर्बुद को पूरा-पूरा निकालने के लिए की जाती वही अब पूरे स्तन को निकालने के लिए की गई। देर होने पर शल्य क्रिया व्यापक तौर पर की गई — पीड़ा तो कम हुई लेकिन जीवन सिमट कर रहा 4-5 साल का ही।

प्राय: यह भी देखा गया है कि यदि साधारण (Benign) अर्बुदों के साथ अनुचित छेड़ छाड़ की जाय तो उसके घातक अर्बुद में बदल जाने की काफी सम्भावना रहती है। अत: यह आवश्यक है कि अर्बुद का निदान होते ही उसकी शल्यक्रिया शीघ्रातिशीघ्र करा ली जाय। यह देखा जाता है कि जब रोगी या उसके अभिभावक को शल्य क्रिया की सलाह दी जाती है तो वे नीम हकीमों, जर्राहों, ओझा इत्यादि की ओर भागते हैं। बाद में लौट कर आने पर फिर होता यह है कि प्रारंभ में शल्य क्रिया से केवल कुछ हानि होती परन्तु अब अर्बुद प्राणलेवा हो जाता है। कारण यह है कि इस बीच में अर्बुद के असंख्य हिस्से शरीर के विभिन्न भागों में पहुँच चुके

होते ह, आर फिर हर तरह का चिकित्सा, शल्य क्रिया, Deep-X-ray (एक प्रकार की बिजली की सिंकाई व दवा आदि) के बावजूद जीवन अधिक से अधिक 5 वर्ष का रह जाता है। अत: यह कहाँ तक ठीक है कि यदि प्रारम्भ में एक अंग की हानि, (जैसे हाथ या पैर का कटना) बचाने के लालच में चिकित्सक की सलाह न मानी जाय, और वही लालच बाद में जीवन हानि का कारण बन जाए। यहाँ एक बात और स्पष्ट कर दें कि अर्बुद में प्रयोग की जाने वाली बिजली की सिंकाई (Deep X-ray Therapy) न केवल अर्बुद के कोशों को ही नष्ट करती है वरन दूसरे स्वस्थ कोशों को भी मारती है। अत: आवश्यक है कि जैसे ही अर्बुद का निदान हो चिकित्सक की सलाह का पूर्ण रूप से पालन किया जाना चाहिए।

कुछ समय पूर्व 15 वर्षीय बालक को लेकर उसके अभिभावक आये। लड़के के कन्धे में सूजन थी जिसका कारण घर वालो के अनुसार 3 माह पूर्व बाग में खेलते समय उसके द्वारा कन्धे में चोट खा जाना था। प्रारंभ में दर्द रहा। गाँव के वैद्यराज ने उसे देखा व सूजन की दवा के साथ 5-6 तरह की एन्टीबायटिक दवायें दी, साथ में कॉरटिको स्टेरॉइड (Cortico-steroid Therapy) उपचार भी किया। सोचा कि कोई न कोई दवा तो असर करेगी ही। दर्द नाशक दवाओं, आदि के प्रयोग से पीड़ा कम लगी और डाक्टर व रोगी दोनों ने समझा कि रोग ठीक हो रहा है। जब तक दवा ली जब--दर्द कम--परन्तु बन्द करते ही दर्द फिर। कुछ दिन बाद दर्द बढ़ता ही गया और सूजन भी बढ़ गई। डाक्टर बदला गया। उसने और तेज दर्द की दवा, नींद की दवा, एंटीबायटिक्स दीं व कॉरटिको स्टेराइड दवाएँ भी दी पर सब बेकार। फिर डाक्टर बदले गये, ओझा को दिखाया गया, झाड़-फूँक करवाई, दान दक्षिण दी, मंदिर

मे मनौती मानी परन्त दर्द व सूजन में कमी न आई। शहर आये — वहाँ भी कई डाक्टर को दिखाया गया — फिर से दवायें सुइयां दी गई परन्तु कोई फर्क न पड़ा।

अंत में वे किसी समझदार चिकित्सक तक पहुँचे। एक्सरे हुए। हड्डी का कैंसर (Osteo-sarcoma) बताया गया और हाथ कटवाने की सलाह दी गई। पर कौन माने इस सलाह को। फिर से दुढ़ाई हुई। ओझा, गंडे-ताबीज की, मौलवी-पीर की, जहाँ सुना — सारा घर भागा। परन्तु पीड़ा व सूजन बढ़ती ही गई। अंत में इतना धन व समय नष्ट करने के पश्चात् फिर वापस आये। हाथ तो कटा ही क्योंकि वही उस बालक को पीड़ा राहत दे सकता था। लेकिन जो जीवन पहले आसानी से 10 वर्ष और चल सकता था, अब मात्र 1 वर्ष का रह गया।

यहाँ यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि जो भी चिकित्सक है (नीम-हकीम व अपने को डाक्टर कहलाने वाले अनगिनत क्वैक्स को छोड़ कर) और जिसने भी आधुनिक चिकित्सा में शिक्षा प्राप्त की है, वह इस बात को अच्छी तरह समझता है कि किसी अग को कटवाने का कितना गंभीर निर्णय ले रहा है। उसके दिमाग मे यह बात पूरी तरह बिठा दी गई है कि कोई भी अंग जब तक शरीर के साथ है, अमूल्य है और कट जाने के बाद उसका मूल्य एक पैसा भी नहीं रह जाता है। वैसे यह हानि रुपये पैसे में नही आकी जा सकती है। रोगी को भी समझना चाहिए कि जब शल्य चिकित्सा किसी अंग को कटवाने की सलाह दे रहा है, तो वह उसे पूरी गंभीरता तथा जिम्मेदारी से दे रहा है। उसे अपने निर्णय की गभीरता का एहसास है। फिर यदि रोगी या अभिभावक थोड़ी ही हिचकिचाहट महसूस कर रहे हैं तो एक और शल्य चिकित्सक की

सलाह ली जा सकती है। यदि दोनों एक मत हों तो रोगी का निश्चित रूप से इलाज शल्य क्रिया ही है।

यह बात सत्य है कि अर्बुदों के पैदा होने का मूल कारण निश्चित नहीं है और कोश (Cells) एक बार नियमित व अनियंत्रित तरीके से बढ़ते गये तो फिर बढ़ते ही चले जाते हैं। फिर शरीर का उस प्रक्रिया पर कोई अनुशासन नहीं रहता है। फिर भी कुछ बाते अवश्य हैं जो इन अर्बुदों के पैदा होने का कारण बन जाती हैं। इनमे से कुछ निम्न है —

1. इस देश में तम्बाकू का सेवन विभिन्न प्रकार से किया जाता है। यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि तम्बाकू — विशेष रूप से मैनपुरी, मुँह के अन्दर कैन्सर पैदा करने में सहायक होती है।

बाबू राम प्रसाद को पान-तम्बाकू का बड़ा शौक था। पहले तम्बाकू की मात्रा 1-2 पत्ती से शुरू की। फिर धीरे-धीरे यह मात्रा बढ़ती ही गई। सुबह दिन निकलते ही पान, चूना, कत्था, तम्बाकू का बड़ा सा गोला मुँह में रखते, इसके 2 घंटे बाद दूसरा और इसी प्रकार रात तक यह कार्यक्रम चलता रहता। अक्सर तो गोले को मुँह मे लगाये-लगाये ही वे रात को सो जाते। धीरे-धीरे तम्बाकू व चूने की मात्रा बढ़ती ही गई। वे चूंकि दफ्तर में बाबू थे, जिन लोगों को उनसे काम पड़ता था, वे उनके लिए विभिन्न प्रकार के किमाम व जर्दा लाने लगे। इस प्रकार तम्बाकू आदि की किस्में भी बदलती रही। कभी चूने से एक गाल कटता कभी दूसरा। कभी जीभ में घाव तो कभी होठों के अन्दर। कभी घाव हो जाता तो चुने तम्बाकू की मात्रा कम हो जाती और कुछ दिनों के लिए घाव भरता हुआ नजर आता, हालाँकि होता नहीं था, लेकिन आदमी को आशा होती है और उसी में उनको लगता कि घाव भर रहा है। लोगों ने सलाह दी

कि पान तम्बाकू कम करिये लेकिन बेचारे बाबू जी कैसे बन्द करते यदि कुछ घंटों के लिए तम्बाकू न लेते तो जीवन सारहीन लगता। सोचते कि बिना पान तम्बाकू जिन्दा कैसे रहेंगे अथवा यह भी क्या जीना है, जिसमें पान तम्बाकू या कोई और व्यसन न हो। वे कहते कि यह छोटा सा व्यसन ही उन्हें अन्य व्यसनों से बचाता है। धीरे-धीरे समय के साथ घाव बढ़ने लगा लेकिन पीड़ा नहीं थी। हाँ — यह घाव उन्हें मसालेदार भोजन व दारू आदि का शौक पूरा न करने देता। डाक्टर को दिखाया गया। उसने गाल का कैन्सर बताया था और जल्दी ही घाव की विशेष जाँच (Biopsy) तथा बिजली की सुइयाँ लगवाने की सलाह दी। कैन्सर का निदान होने पर बायोप्सी आदि से उसका पूरा निश्चय करना आवश्यक हो जाता है। खैर बाबू साहब पढ़े लिखे व्यक्ति थे — और डाक्टर की बात मान ली। पर मन में वहम-सा था कि उन्हें कैन्सर हो ही नहीं सकता है। इसे वहम कहें या मनुष्य की वह आशा जो शुर्त-मुर्गीय प्रवृत्ति कहलाती है (शिकारियों द्वारा रेगिस्तान में पीछा किये जाने पर शुतुर्मुर्ग भाग कर जान बचाने की जगह रेत में सिर गड़ा कर सोचता है कि शिकारी चले गये)। दो चार दिन के लिए पान तम्बाकू बन्द कर दी। उन्हें लगा घाव ठीक हो रहा है। फिर वह शहर के माने जाने जर्राह के पास पहुँचे। जर्राह पढ़ा-लिखा तो कम था परन्तु व्यवसायिक बुद्धि अधिक थी। उसने बाबू रामप्रसाद को ऐसा समझाया कि उन्हे लगा कि शहर तो क्या - देश विदेश के माने-जाने शल्य चिकित्सक भी उसके यहाँ ज्ञान प्राप्त करने आते हैं। उसने शायद किसी अच्छे शल्य चिकित्सक के यहाँ पट्टी आदि बाँधने का कार्य किया था। वहाँ रह कर उसने कुछ डाक्टरी शब्दावली भी सीख ली थी। उसके घाव में नश्तर लगाया और विश्वास दिलाया कि वे ठीक हो जायेंगे। साथ

ही यह भी शक डाल दिया कि चूँकि वे काफी इधर-उधर भटक चुके है अत: हो सकता है ठीक होने में कुछ अधिक समय लग जाए। यह जर्राह साहब की दुधारी तलवार थी। रहा फीस का सवाल को उन्होंने 500 रुपये में ठेका तो ले ही लिया था। ठेका भी ऐसा कि जिसकी शर्तें देख कर देश का बड़ा से बड़ा वकील भी चक्कर खा जाय। उसमें रोगी के हित की कोई बात नहीं थी। केवल डाक्टर या जर्राह के हित की बातें थीं। खैर घाव ठीक न होना था, न हुआ और अंत में वही हुआ जो पहले होना था। शल्य क्रिया, रेडियम थेरैपी व कैन्सर विरोधी दवाओं के कारण घाव तो भर गया पर गाल टेढ़ा हो गया और इस पर डर रह गया कि कहीं कैन्सर के द्वितीयक (Secondaries) गर्दन की लिम्फ नोडों (Lymph Nodes) में न पहुँच गये हों क्योंकि ऐसा होने पर ये फिर उभर आते हैं और उनकी शल्य क्रिया भी आवश्यक हो जाती है।

अब बाबू राम प्रसाद न तो स्वयं पान तम्बाकू खाते हैं और न किसी को इसके लिए प्रेरित करते हैं। जब किसी को पान तम्बाकू खाते देखते हैं तो उसे इसके लिए मना करते हैं।

यह निश्चित है कि चूना, तम्बाकू आदि गाल, होंठ व जीभ के कैन्सर के प्रमुख कारण हैं। विश्व में इस प्रकार के कैन्सर भारत वर्ष में उत्तर प्रदेश के मैनपुरी, एटा, इटावा आदि स्थानों पर जहाँ मैनपुरी तम्बाकू का अधिक प्रचलन है, सबसे अधिक संख्या में होते है।

इस बात को सभी जानते व समझते है लेकिन फिर भी तम्बाकू बन्द नहीं होती है। सिगरेट बीड़ी से फेफड़ों का कैन्सर होता है —यह निश्चित है। फिर भी चाहे कोई भी देश हो, पूर्व का हो या पश्चिम का गरीब हो या अमीर — हर जगह सिगरेट-बीड़ी का

व्यसन बढ़ता ही जा रहा है और साथ ही साथ बढ़ रहा है फेफड़ो का कैन्सर। आप अक्सर सिगरेटों का विज्ञापन देखते हैं—सडक पर, अखबारों में, सिनेमाघरों में—पूर्ण पृष्ठ का विज्ञापन कितना लुभावना—कितना आकर्षक —'जीवन में तसल्ली चाहिए— सिगरेट पीजिए'—आखिर तसल्ली किसे नहीं चाहिए? 'अकेले क्षण हो — सिगरेट पीजिए, —'एक दूसरे के लिए बने हैं सिगरेट व फिल्टर वैसे ही — जैसे पति पत्नी' 'फिर आप क्यों नहीं सिगरेट पीना चाहेंगे? और फिर छोटे-छोटे शब्दों में एक लाइन—'सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।' कितना बड़ा मजाक है जनता के साथ सिगरेट का विज्ञापन भी पूरा हो गया और जनता के प्रति सरकार का उत्तरदायित्व भी। सरकार ने तम्बाकू सिगरेट-बीड़ी पर पूरा टैक्स लिया—समाज के उत्थान के नाम पर, योजनाओं के नाम पर, स्वास्थ्य सेवाएँ देने के लिए परन्तु सिगरेट-बीड़ी पीने वालो के स्वास्थ्य को ही बिगाड़ा। इस पर भी तुर्रा यह कि यह सब जनता के लिए। कैसा मजाक किया जा रहा है।

गर्भाशय के मुख का कैन्सर :-

इसका मुख्य कारण बार-बार गर्भ ठहर जाना। बच्चे के पैदा होते समय इस भाग पर घाव हो जाते हैं। यदि वे घाव बार-बार होते रहे — चाहे गर्भपात होने पर या बच्चा पैदा होने पर तो ये घाव अर्बुद या कैन्सर में बदल जाते हैं। इस प्रकार के कैन्सर उन जाति की स्त्रियों में अधिक पाये जाते हैं जिनके यहॉ पुरुषों में खतना (Circumcision) नहीं होता है। इसका कारण पुरुषों के लिंग की चमड़ी के अन्दर मैल का जमा होना है। यह मैल स्त्री की योनि मे प्रविष्ट होकर विषैले तत्वों को पैदा करता है जो कैन्सर पैदा करने मे सहायक होते है। इसमें स्त्रियों की योनि से मवाद या थोड़ा रक्त

मिश्रित पतला द्रव्य निकलता रहता है जिसे प्राय: स्त्रियाँ किसी प्रकार का प्रदर (Leucorrhoea) समझती हैं। यह सत्य है कि इस देश में जहाँ युवक हर चीज का काम में अपना पौरुष नष्ट होते हुए देखते हैं और एक प्रकार की हीनता का भाव मन में भरते चले जाते हैं — वहीं स्त्रियाँ प्रदर, जो सैकड़ों बीमारियों का लक्षण मात्र है, के कारण हीन भाव से ग्रस्त रहती है। (प्रदर कोई विशेष बीमारी न होकर एक लक्षण मात्र (Symptom Compelx) का नाम है जिसका मुख्य लक्षण स्त्री की योनि से अधिक स्राव का होना है।) अत: जब भी स्त्रियों को स्राव में कोई परिवर्तन दिखाई दे, विशेषतया 40 वर्ष की उम्र के बाद, तब इधर-उधर दाइयों के चक्कर में न घूमे तथा योग्य चिकित्सक से सलाह लेकर उचित चिकित्सा करवा लें। नीम-हकीम या मुल्लाओं, पंडितों, ओझाओं के इलाज में शुरु में यह हो सकता है कि रोगी को लगे कि इलाज कम खर्च में ही हो रहा है परन्तु यह सत्य है कि उसमें अधिक समय, अधिक हानि व अधिक धन नष्ट होता है।

चिकित्सक आपका मित्र है — सलाहकार है। वह आपको उचित चिकित्सा की ही सलाह देगा। उसकी बात मान कर अगर आप उस पर विश्वास करेंगे तो आपका विश्वास संभालने के लिए उसे उचित निदान व उचित चिकित्सा की व्यवस्था करनी ही पड़ेगी।

☐☐

छोटे घाव तथा चोटें

अक्सर देखा जाता है कि दैनिक कार्यों के बीच कही न कहीं चोटें लग जाती हैं या कट जाता है। कभी चाकू से अंगुली कट गई तो कभी दाढ़ी बनाते समय गाल आदि। जरा सा खून निकला नहीं कि हल्ला मचता है — कट गया, कट गया। सब भागे इधर से उधर को — यह लाओ —यह लगाओ की आवाजें पैदा होने लगती हैं। पर क्या यह सब आवश्यक है?

घाव होने पर त्वचा व उसके नीचे मांस पेशियां कट जाती है इससे रक्त में पाया जाने वाला थ्रॉम्बोप्लास्टीन (Thromboplastin) नामक पदार्थ थ्रॉम्बीन (Thrombin) नामक पदार्थ में बदलने लगता है जिससे रक्त का (fibrinogen) फाइब्रिनोजेन नामक प्रोटीन फाइब्रीन (fibrin) में बदल जाता है। यह पदार्थ मकड़ी के जाले की तरह होता है जिससे रक्त का ठोस भाग चिपक जाता है और रक्त जम जाता है। साथ ही द्रवीय पदार्थ सीरम (Serum) घाव के आसपास इकट्ठा हो जाता है। इस क्रिया के लिए आवश्यक है कि रक्त को जमने दिया जाय। यदि घाव को बार-बार छेड़ा जायगा तो यह प्रक्रिया पूरी न होगी व रक्त बहना बन्द न होगा। अत: यह आवश्यक है कि घाव लगने पर उस स्थान को स्वच्छ पानी से साफ करके उस पर हल्का सा दबाव डाला जाय ताकि रक्त जमने की प्रक्रिया सुचारू रूप से तथा शीघ्र ही पूरी हो जाए। जहाँ तक विज्ञान को ज्ञात है रक्त रोकने का सर्वोतम उपाय दबाव है। यदि 2-3 मिनट तक दबाव डाल दिया जाय तो बड़े से बड़ा रक्त का प्रवाह बन्द हो

जायगा। इस बारे मे एक सच्ची घटना लिखना आवश्यक है।

सन् 1896 में एक फ्रांसीसी शल्य चिकित्सक वृक्क या गुर्दे (Kidney) का आपरेशन कर रहा था। गुर्दे की धमनियाँ एओर्टा (Aorta) नामक महाधमनी की मुख्य शाखायें हैं। ये गुर्दे में रक्त लाती हैं जहाँ इसकी छनने की प्रक्रिया होती है जिससे रक्त मे उपस्थित अधिकांश विषैले तत्व निकल जाते हैं। शरीर का पूरा रक्त दोनों गुर्दों में से होकर - मिनट में एक बार निकल जाता है। इसी से अन्दाज लगाया जा सकता है कि वृक्क की धमनियां व शिरायें कितना रक्त लाती व ले जाती रहती हैं। अत: यदि इनमें से कोई धमनी किसी कारण से कट जाये या उस पर लगा हुआ टाका फिसल जाये तो रक्त का फव्वारा करीब 1½ फुट ऊँचा उठ जाता है और रोगी की तत्काल मृत्यु रक्त विहीनता के कारण हो जाती है। इस फ्रांसीसी चिकित्सक के साथ हुआ भी यही। शल्य चिकित्सक को कुछ और नहीं सूझा तो आपरेशन टेबल पर जितनी भी तौलिए थी सभी आपरेशन के घाव में भर दीं (आपरेशन के समय आपरेशन स्थल को ठीक तरह से साफ करके अन्य भागों को तौलियों से ढक दिया जाता है। और आपरेशन के दौरान रक्त को इन्हीं तौलियो से पोछते हैं ताकि आपरेशन स्थल के सभी अंग-उपंग अवयव ठीक प्रकार से दिखाई देते रहें)। फिर वह चिकित्सक यह सोचते हुए बड़े दुखी मन से बाहर आकर बैठ गया कि आज उसके हाथों एक मरीज की मृत्यु हो गयी — अच्छा होता कि एक टाँके के स्थान पर दो टाँके लगा देता (आज कल दो टाँके लगाये जाते हैं) — यदि ऐसा करता तो ठीक हो जाता। दुखी मन बैठा शल्य चिकित्सक इसी उधेड़बुन में था, कि शल्य कक्ष की परिचारिका (Theartre Sister) ने आकर सूचना दी कि रोगी की हालत ठीक है। स्वांस व रक्त चाप

(Respiration & Blood Pressure) ठीक है शल्य चिकित्सक का विश्वास ही नहीं हुआ। फिर से स्वच्छ होकर शल्य कक्ष में पहुँचा। तौलियें एक-एक करके हटाईं और देखा कि गुर्दे की धमनियाँ पूरी तरह से संकुचित हो गयी थीं और रक्त स्राव बिलकुल नहीं था। यह पहली घटना थी जब दबाव का रक्त स्राव पर असर देखा गया। यह सत्य है कि यदि शल्य चिकित्सक इस नियम का पालन न करता तो वह रक्त नलिकाओं को ठीक से पकड़ने में असमर्थ रहता क्योंकि ऊपरा भाग तो रक्त से भरा होता और सही नलिका को पकड़ने मे वह अन्दाज से काम लेता जो कि भरे तालाब में एक विशेष मछली पकड़ने के समान है। यह भी हो सकता है कि प्रयास में वह किसी अन्य नलिका, महत्वपूर्ण अंग या (Duct) को पकड़ ले जिससे शरीर को अत्यधिक हानि की संभावना हो। ऐसा अधिकांशत: पित्त की थैली (Gall Blader) की शल्य क्रिया में होने का डर रहता है। इस अनुभव के बाद वह फ्रांसीसी चिकित्सक इतना प्रसिद्ध हो गया कि देश-विदेश के शल्य चिकित्सक उसका यह चमत्कार देखने आये। वृक्क या गुर्दे का आपरेशन होता और उसकी धमनी अकस्मात न कट कर जान बूझ कर काट दी जाती। घाव में तौलिये भर दिए जाते और सब चिकित्सक बाहर आ जाते। मौसम की चर्चा होती (विदेशों में अधिकांशत: बात मौसम पर ही शुरू व समाप्त हो जाती है। लोगों में गप्प या इधर-उधर की झूठी-सच्ची कहानियाँ नही सुनी सुनाई जातीं) — चाय काफी पी जाती और फिर कुछ समय बाद शल्य चिकित्सक अपनी क्रिया को पूरा करते। इसका कारण यह है कि यदि रक्त धमनी से आ रहा है तो दबाव के कारण धमनी की (Submucous layer) सबम्यूकस परत में स्थित लचीली परत को सिकुड़ने का मौका मिल जायेगा और यदि रक्त शिरा से आ रहा

है तो दबाव ही रक्त जमाने के लिए पर्याप्त है।

आज से कुछ समय पूर्व प्राथमिक चिकित्सा मे दबाव बिन्दुओं (Pressure Points) को बताने व समझाने का बड़ा रिवाज था — कहा जाता था कि यदि उन बिन्दुओं पर सीधा दबाव या रूमाल में पैसा बाँध कर दबाव डाला जाय तो रक्त शीघ्र बन्द हो जाता है। यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध की जा चुकी है कि धमनियों में कोई विशेष दबाव बिन्दु नहीं होता है अत: अब इस पद्धति का कोई उपयोग नहीं है।

इसके बाद इतना अवश्य है कि कुछ रक्त के रोगों में रक्त का बन्द न होना ही मुख्य है और इनमें से भी मुख्य है हीमोफीलिया व परप्यूरा (Haemophilia and Purpura) । हीमोफीलिया एक जन्म संगत रोग है जिसमें स्त्रियाँ वाहक (Carrier) होती हैं अर्थात् इनमें लक्षण नहीं होते हैं और पुरुषों में जरा सी चोट लगी कि रक्त का बहना शुरू हो जाता है और रुकना बड़ा कठिन हो जाता है। इसके लिए सबसे उत्तम चिकित्सा होती है उसी ग्रुप का ताजा रक्त। यदि रोगी के जरा-सी चोट लगने पर रक्त बन्द न होने की शिकायत रही है तो चिकित्सक को तुरंत ही इसके बारे में बताना चाहिए। यह सभव है कि रोग के सारे लक्षण शरीर के भाग विशेष में हुए रक्तस्राव के कारण ही हों और शल्य कर्म न केवल अनावश्यक परन्तु खतरनाक हो जाय और यदि शल्य कर्म किया ही जाता है तो रक्त का बहना बन्द ही न हो और रक्त की कमी से रोगी की दशा गभीर हो जाए। यह प्राय: देखा गया है कि रोगी या उसके अभिभावक प्राय: अपने रोग को छिपाने की कोशिश करते हैं या उसके प्रति लापरवाह रहते हैं या बताना आवश्यक नहीं समझते हैं। रोगी व उसके अभिभावकों का कर्त्तव्य है कि चिकित्सक को अधिक से

अधिक सूचना रोग और रोगी के बारे मे दे ताकि उसके रोग के निदान व उपचार में अधिक से अधिक सहायता मिल सके।

फोड़ा (Abscess)

शायद ही कोई व्यक्ति हो जिसे कभी फोड़ा-फुंसी की शिकायत न हुई हो। जिसके शरीर पर फोड़ा हुआ वहाँ वह अपना भद्दा-सा दाग अवश्य छोड़ जाता है। इसका कारण है कि अधिकांश लोगों को फोड़े के बारे में ठीक तरह से ज्ञान नहीं है और उसका उचित उपचार नहीं करते।

जब शरीर के किसी भाग में मवाद (pus) इकट्ठी हो जाती है तो हम उसे फोड़ा कहते हैं। जैसे त्वचा का फोड़ा (Cutaneous Abscess) गले का फोड़ा (Neck Abscess), बगल का फोड़ा (Axillary Abscess) आदि। इसके अलावा शरीर के अन्दर के अंगों में भी फोड़ा बन सकता है जैसे —दिमाग का फोड़ा (Brain Abscess), जिगर का फोड़ा (Liver Abscess) , अपेन्डिक्स का फोड़ा (Appendicular Abscess) आदि।

प्राय: फोड़ों के उपचार के लिए रोगाणुनाशक दवायें (Antibiotics) दी जाती हैं। ये गोलियों, कैप्सूलों व सुइयों के रूप में उपलब्ध है। पेनिसिलीन, टेरामाइसिन, टेट्रासाइक्लिन व सेप्ट्रान आदि कुछ ऐसी ही दवाओं के नाम हैं। ये दवायें फोड़े के उपचार में लाभकारी अवश्य होती हैं परन्तु मात्र इनके ही भरोसे रह जाने से हानियाँ भी होती हैं। जैसे फोड़े का काफी दिन में ठीक होना, या ठीक होकर फिर उभर आना या ठीक ही न होना आदि।

घर में किसी बच्चे आदि को फोड़ा होने पर बड़े बूढ़े नानी, अम्मा राय देंगी कि अमुक पौधे की पत्ती गर्म करके बाँध दो रात भर में पक कर फूट जाएगी। यह क्रम कई दिनों तक चलता है, दर्द

होता रहे, मरीज चिल्लाता रहे लेकिन पत्ती या लेप बदलते रहेंगे। और प्राय: ऐसा होता है कि फोड़ा फूट कर बह भी जाता है। परन्तु यदि फोड़ा अपने आप फूट कर बह जाता है तो ठीक तो अवश्य हो जाता है परन्तु एक भद्दा सा दाग अवश्य छोड़ जाता है। कभी-कभी यह फोड़ा उल्टी ओर फूट जाता है या शरीर के किसी दूसरे अंग मे फूट जाता है और जब तक पीप बाहर नहीं निकलती शरीर का नुकसान ही करती रहती है।

अब संक्षेप में हम यह जान लें कि फोड़े का सही उपचार क्या होना चाहिए। जब फोड़ा बनना शुरू होता है तो उक्त भाग मे दर्द या जलन होने लगती है तथा त्वचा लाल पड़ जाती है। छूकर देखने से उस भाग का ताप भी अधिक मालूम होता है। यदि इसी अवस्था में फोड़े की जानकारी हो जाय तो मात्र दवाओं से उसे ठीक किया जा सकता है। परन्तु यदि इस अवस्था में फोड़े का उपचार न किया गया तो त्वचा में सूजन आ जाती है और त्वचा कभी-कभी पीली पड़ जाती है। यह वह अवस्था होती है जब मवाद या (Pus) उक्त स्थान पर एकत्र हो जाता । ऐसी स्थिति में फोड़े को शीघ्रातिशीघ्र ठीक करने के लिए आवश्यक है कि उस मवाद को बाहर (Drain-age) निकाल दिया जाय।

आपरेशन तथा चीरा

प्राय: जनसाधारण में यह विचार पाया जाता है कि आपरेशन की गम्भीरता उसके चीरे की लम्बाई पर निर्भर करती है। अक्सर रोगी अपने चीरे की लम्बाई व टाँकों की संख्या का बड़ी गम्भीरता से वर्णन करते हैं — अरे साहब, 8 इंच का चीरा लगा अथवा 32 टाँके लगे। कहीं-कहीं तो यह ठीक हो सकता है परन्तु अधिकांशत यह भ्रमकारक ही है। चीरे की लम्बाई इस बात पर निर्भर करती है

कि क्या आपरेशन होना है? किस अंग पर होना है? वहाँ तक पहुँचने के लिए किस मार्ग से जाना होगा, जो कि कम से कम हानिकारक व सीधा हो। इन बातों को निम्न तरह से स्पष्ट किया जा सकता है —

अपेन्डिक्स नामक आंत के एक भाग को निकालने के लिए 1/2 इंच से लेकर 6 इंच तक का चीरा लगाया जाता है। जब निदान निश्चित हो तथा अपेन्डिक्स की सूजन समाप्त प्राय: हो तो 1/2 इंच के चीरे से काम चल जाता है जिसे डाक्टर बटन होल या बटन के बराबर का चीरा के नाम से पुकारते हैं। दूसरी परिस्थिति में जब कि निदान निश्चित न हो पेट के अन्दर किसी और रोग की सम्भावना हो या अपेन्डिक्स के फट जाने की आशा हो या पेट के दूसरे भागों की भी जाँच करनी हो तो 6 इंच तक का चीरा लगाना पड़ता है जिसे चिकित्सक लेप्राटमी (Laparotomy) कहते हैं।

अब रही दूसरी बात — टांकों की संख्या। टांके शरीर के विभिन्न भागों में विभिन्न कार्यों के लिए लगाये जाते हैं। हम पहले चमड़ी या (Skin) पर लगाये जाने वाले टांकों पर विचार करें।

चमड़ी को सीने के लिए अधिकांशत: सूत (Cotton) के धागे का इस्तेमाल किया जाता है। इसका कारण यह है कि सूत घाव के पूरा होने पर (जो सामान्य रूप में 5 से 12 दिन होता है) काटकर निकाल दिए जाते हैं। चेहरे व गर्दन में जहाँ रक्त अधिक मात्रा में पहुँचता है घाव 4-6 दिन में सूखता है तथा अन्य स्थानो पर लगभग 10 दिन लेता है। जिन रोगियों में रक्त अल्पता (Anaemia) या मधुमेह (Diabetes) या अन्य इसी प्रकार की बीमारी हो जिसमें शरीर की प्रतिरोध शक्ति कम हो जाती है या रक्त संचालन में गड़बड़ी होती है उनके घाव सूखने में अधिक समय लेते हैं। यह

समय सामान्यत: 12 से 15 दिन के बीच होता है। यदि इस बीच में भी घाव न भरे तो ये टांके काटकर निकाल दिये जाते हैं। कुछ परिस्थितियों में टांके फिर से लगाये जा सकते हैं। शल्य क्रिया के उपरान्त घाव देर से भरने का कारण टॉकों में या उनके नीचे मवाद का पड़ना है। ऐसी स्थिति में घाव की सभी सतहें एक साथ न जुड कर नीचे से जुड़ती हुई ऊपर को बढ़ती हैं और घाव के भरने में महीनों लग सकते हैं। शल्य चिकित्सक चाहता है कि एक ओर तो शरीर का प्रतिरोध व घाव भरने की प्रक्रिया ठीक हो तथा दूसरी ओर घाव में किसी प्रकार का संक्रमण (Infection) न हो तभी चीरे का निशान छोटा पतला व लाइन की तरह का होगा अन्यथा वह मोटा कड़ा व चौड़ा हो सकता है। टांके लगाने के लिए सूत के स्थान पर रेशम भी प्रयुक्त होता है परन्तु रेशम में गाँठ ठीक तरह से नहीं लगती यद्यपि रेशम के टांके में संक्रमण का खतरा कम रहता है। इनको भी सूत के टांकों की ही भाँति काटकर निकाल दिया जाता है।

इसके अलावा कभी-कभी स्टील की क्लिपें भी प्रयुक्त होती है। इन्हें (Michel Clips) के नाम से जाना जाता है। आज से 30 साल पूर्व इनका प्रयोग काफी था पर अब नहीं के बराबर है क्योंकि इनके निकालने के समय रोगी को बहुत कष्ट होता है।

अब आइये बात करें अन्दर के टांकों के बारे में। खाल के नीचे (Muscle) तथा अन्य अंगों पर या आँतों में टांके कैटगट (Catgut) के लगाये जाते हैं। कैटगट का शाब्दिक अर्थ हुआ बिल्ली की आँत । परन्तु ये धागे भेड़ की आँत में पाये जाने वाले लचीले भाग से एक विशेष प्रकार से तैयार किये जाते हैं। इनकी मोटाई 07 से लेकर 7 नम्बर तक की होती है। परन्तु अधिकांशत: 1 नम्बर की

ही कैटगट इस्तेमाल की जाती है। इन टांकों का गुण यह है कि ये घाव के साथ में ही घुल जाते हैं और बाद में काट कर निकालने की आवश्यकता नहीं होती है। साधारण कैटगट 10-15 दिन में घुल जाती है और इसी समय में ही घाव भी पूरा हो जाता है। परन्तु यदि घाव पूरा होने में जरा भी शंका हो तो दूसरे प्रकार की कैटगट जिसे क्रोमिक गैटगट (Chromic Catgut) कहते हैं प्रयुक्त होती है। इसमें साधारण कैटगट के ऊपर क्रोमिक अम्ल (Chromic Acid) के लवण एक विशेष विधि द्वारा चढ़ाये जाते हैं जिससे इसको घुलने में 12-14 दिन लगते हैं ।

आजकल नये प्रकार के कृत्रिम रूप से बनाये गये डोरे (Synthetic Fibres) भी मिलते हैं जो विशेष प्रक्रिया में एक विशेष लाभ के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं ।

❑❑

नसबन्दी

(Sterilization)

"छोटा परिवार-सुखी परिवार? हम दो-हमारे दो" "अगला बच्चा अभी नहीं तीन के बाद कभी नहीं" आदि नारे, वयस्कों तो क्या बच्चों को भी भली-भाँति याद हो गये हैं, भले ही वे इसका मतलब न समझते हों, इसकी एक मजेदार घटना एक महिला चिकित्सक के परिवार में घटी। परिवार में डॉ0 साहिबा के अतिरिक्त उनके पति, एक पुत्र व एक पुत्री है। यह घटना उस समय घटी जब उनकी पुत्री करीब 5 वर्ष की रही होगी बच्ची ने रेडियो आदि पर तन्दुरुस्ती व सुखी परिवार का राज "निरोध" सुन रक्खा था। एक दिन माँ (महिला चिकित्सक) दिन भर काम करने के बाद हारी थकी जब घर पहुँचीं तो सर में बड़ा दर्द था। भूख व प्यास से बेहाल थीं। जाते ही उन्होने नौकरानी को आज्ञा दी कि चाय बनाकर ले आओ — सर में बहुत दर्द है। बच्ची फौरन बोली "मम्मी-मम्मी निरोध ले लीजिए।" अब वह बालिका क्या जानती कि निरोध तन्दुरुस्ती का राज तो हो सकता है लेकिन सर दर्द का नहीं। अब भी (15 वर्ष बाद) उस महिला चिकित्सक को अपने रोगियों को "निरोध' बताते समय यह घटना मन ही मन गुदगुदा देती हैं। यह इस बात को स्पष्ट करता है कि परिवार-नियोजन हमारे बीच कितना प्रचलित हो गया है। रेडियो-सिनेमा-दूरदर्शन आदि सभी माध्यमो से इसका प्रचार हो रहा है। देश की बढ़ती हुई समस्याओं को देखकर यह मानना पड़ता है कि सचमुच हर देशवासी का देश के प्रति

कर्त्तव्य है कि वह देश की तेजी से बढ़ती आबादी को और बढ़ने से रोके। इस कार्य में परिवार नियोजन कितना सहायक है इसका अब हमें अनुभव होने लगा है। परिवार नियोजन ने हमें ऐसे बहुत से तरीके बताये हैं जिनसे हम सन्तानोत्पत्ति पर नियन्त्रण पा सकते हैं। अभी तक सन्तानोत्पत्ति मनुष्य की प्राकृतिक क्रियाओं का अनियन्त्रित व अनियोजित परिणाम हुआ करती थीं परन्तु यह नियन्त्रित व नियोजित हो सकती है। सन्तानोत्पत्ति रोकने के उपायों को दो भागों में बाँटा जा सकता है।

1. अस्थायी
2. स्थायी

अस्थायी – ये साधन अस्थायी हैं तथा दो सन्तानों के बीच फासला रखने के लिए उपयोगी हैं। जैसे, कन्डोम, डायफ्राम, लूप, कापर–टी तथा दवायें (पिल्स) आदि।

स्थायी – ये साधन स्थायी रूप से सन्तानोत्पत्ति रोक देते हैं। ये शल्य कर्म की सहायता से किए जाते हैं तथा पुरुष नसबन्दी (Vasectomy) व महिला नसबन्दी (Tubectomy) के नाम से जाने जाते हैं।

पुरुष नसबन्दी (Vasectomy) :

पुरुषों के अण्ड कोषों में शुक्राणु उत्पन्न होते हैं। शुक्र वाहिनियों (Vas deferens) द्वारा शुक्र ग्रन्थियों (Seminal Vesicles) में से होते हुए लिंग में स्थित मूत्र मार्ग द्वारा बाहर निकलते है।

प्रत्येक मनुष्य में दो अण्डकोष, दो शुक्रवाहीनियाँ, दो शुक्र–ग्रन्थियाँ तथा एक मूत्र वाहिनी होती है। पुरुष नसबन्दी में आपरेशन में शुक्रवाहिनियों को काट कर उल्टा बाँध दिया जाता है जिससे शुक्राणुओं का मार्ग अवरुद्ध हो जाय। फिर धीरे–धीरे अण्डकोषों में

शुक्राणुओं का उत्पादन भी बन्द हो जाता है।

आपरेशन के बाद प्रारंभिक स्खलनों मे जीवितावस्था म शुक्राणु मिलते हैं। ये वे शुक्राणु हैं जो आपरेशन के पहिले से ही शुक्र-ग्रन्थियों में एकत्रित रहते हैं। इन शुक्राणुओं से गर्भधान हो सकता है।

अतः यह आवश्यक है कि आपरेशन के पश्चात् वीर्य (Semen) की जॉच कराये बिना संसर्ग न किया जाय, और यदि किया जाय तो उचित सावधानी ली जाए। ये सावधानियॉ कम से कम 4 महीने तक ली जानी चाहिए। लगभग दस स्खलनों के बाद ये शुक्राणु समाप्त हो जाते हैं तथा गर्भधान की सम्भावना समाप्त हो जाती है।

आपरेशन के छः से आठ सप्ताह के बाद वीर्य (Semen) की जाँच कराने पर यदि शुक्राणुओं की संख्या शून्य हो तभी आपरेशन सफल माना जाता है। और तब ही बिना किसी सावधानी के संभोग की अनुमति मिलती है अन्यथा कभी-कभी पुनः आपरेशन की आवश्यकता पड़ती है।

यहॉ अब से लगभग 20 वर्ष पूर्व एक ईसाई परिवार का युवक मेरे पास आया। उस मैं इस समय प्रदेश की राजधानी के अस्पताल में शल्य चिकित्सक के पद पर काम कर रहा था। रोगी लगभग 11 बजे मेरे पास आया और फिर कमरे के बाहर हो गया कि वह मुझसे आखिर में व एकान्त में ही बात करेगा। मैंने उससे पूछना भी चाहा पर वह हर बार टाल जाता। दोपहर लगभग डेढ़ बजे भीड़ खत्म हुई। तब मैं उसे बुलाया — पूछा, क्या बात है? उस युवक के मुँह से बोल नहीं निकले। खैर मैंने उसे सान्त्वना दी — कन्धे पर हाथ रखा, थपथपाया तो बेचारा रो पड़ा। उसकी

करना है। मैंने उसे पुरुष नसबन्दी के असफल होने के कारण समझाये।

शायद उस युवक में कुछ हिम्मत आयी। तभी मैंने उसे आज्ञा दी कि वह अपने वीर्य (Semen) का नमूना मुझे अभी दे ताकि मैं उसकी तुरन्त जाँच कर सकूँ क्योंकि मैंने सोच लिया था कि इसके वीर्य मे यदि शुक्राणु न भी हुये तो मैं असत्य बोल दूँगा कि उसके वीर्य में शुक्राणु मौजूद हैं और इसी कारण से पत्नी गर्भवती हो गई है। इस झूठ से शायद उसका जीवन व परिवार बच जाय।

थोड़ी देर में उस युवक ने मुझे अपने वीर्य का नमूना दिया और जैसे ही मैंने इसे स्लाइड पर लगा कर खुर्दबीन से देखा — मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसके वीर्य में साधारण से अधिक शुक्राणु मौजूद थे। उसे भी दिखाया कि कितने अनगिनत शुक्राणु सॉप के समान तेजी से तैरते हुए इधर उधर भाग रहे थे। उसके चेहरे की खुशी व संतोष का भाव आज भी मुझे याद है। कितनी बडी समस्या का समाधान वह कुछ ही मिनटों में पा गया था।

दूसरे ही दिन मैंने उसे शल्य कर्म के लिए बुलाया और जब मैंने दोबारा आपरेशन किया तो पाया कि गाँठे शुक्र नलिकाओं पर न लग कर आस पास की शिराओ पर लगी थीं।

आपरेशन करते समय विशेष रूप से अतिरिक्त शुक्र नलिकाओं को देखने का भी प्रयत्न किया। नलिकाओं को केवल दो स्थानो से बॉधा ही नहीं बल्कि बीच से काट कर निकाल दिया और कटे भाग को उल्टा मोड़ कर सी दिया ताकि किसी भी अवस्था में नलिका फिर से न जुड़ सके। दूध का जला छाछ को जभी फूँक-फूँक कर पीता है।

आपरेशन सफल रहा— इसका प्रमाण उसके वीर्य का 3 माह बाद का परीक्षण था। कुछ समय बाद उस दम्पत्ति के पुत्र पैदा

हुआ जिसका नाम उन्होंने रक्खा, रमेश विक्टर मैसी। मेरे प्रथम नाम पर नवजात का नाम — शायद चिकित्सक के लिए इससे बड़ी उपलब्धि क्या होती? मैं उस परिवार का (जब तक मैं उस शहर मे था) अभिन्न मित्र रहा और हर क्रिसमस पर केक मिठाई खाता रहा।

20 वर्ष पूर्व परिवार नियोजन की इन शल्य क्रियाओं को आज के समान गंभीरता से नहीं लिया जाता था। और इसमें विशेष दक्षता के प्रयास भी नहीं किए जाते थे। यह बहुत ही छोटा आपरेशन होने के कारण यह शल्य कर्म प्राय: सबसे कठिन शल्य चिकित्सकों को दे दिया जाता था। बड़े अस्पतालों में प्राय: ऐसा ही हुआ करता था। परन्तु अब परिवार नियोजन एक राष्ट्रीय महत्व की चीज हो गई है और इसी से जुड़ गया है — डाक्टरों का रिकगनिशन (Recognition)। अधिकांश राज्यों में अब इन डाक्टरो को न केवल एक निश्चित धनराशि मिलती है अपितु डाक्टरों की वार्षिक चरित्र पंजिका में भी इसका उल्लेख होता है।

बहुधा लोगों में धारणा है कि नसबन्दी के बाद पुरुष नपुंसक (Impotent) हो जाता है तथा सम्भोग शक्ति क्षीण हो जाती है किन्तु यह धारणा सर्वथा असत्य और भ्रामक है। नसबन्दी के बाद भी पुरुष शारीरिक व लैंगिक रूप से पूर्ववत स्वस्थ एवं सक्षम रहता है तथा पूर्व की ही भाँति वीर्य स्खलन भी करता है — अन्तर केवल इतना होता है कि वीर्य में शुक्राणु नहीं रहते जिससे गर्भाधान नहीं हो पाता है व अवांछित सन्तानोत्पत्ति से बचाव हो जाता है।

अन्डकोषों में मुख्यतया दो तरह के कार्य-शील कोश होते हैं। एक प्रकार के तो वे जो परिधि में स्थित रहते हैं तथा गुणित अनुपात में शुक्राणु बनाते हैं जो शुक्र वाहिनी द्वारा बाहर आते है। नसबन्दी के बाद ये मात्र बाहर ही नहीं आ पाते — वरन् उल्टा

(Back Pressure) पैदा करते हैं जिससे कि इन कोशों की मृत्यु हो जाती है। अधिक से अधिक एक वर्ष तक शल्य क्रिया द्वारा शुक्र नली का पुन: निर्माण (Recanalisaton of Vas) होने पर शुक्राणुओं के फिर से पैदा होने की संभावना रहती है।

दूसरे प्रकार के कोश वे होते हैं जो इन परिधियों के बाहर होते हैं जिन्हें सेल्स आफ सरटोली (Cells of Sertoli) कहते हैं। ये नलिका विहिन ग्रन्थियों (Endocrine Glands) का एक भाग है। इनका स्राव (Harmone) नलिकाओं में न जाकर रक्त में जाता है और यह है पुरुष हारमोन (Male Harmones) जिसका एक भाग है (Testosterone) टेस्टीस्टेरान और यही पुरुषत्व का नियन्त्रक है। इसी से पुरुषों की शारीरिक एवं लैगिक शक्ति, दाढ़ी-मूछ, आवाज का भारीपन तथा सर के बालों के बीच माथे पर खाली स्थान इत्यादि नियन्त्रित होते है। अब तो आप समझ ही गये होंगे कि पुरुष नसबन्दी से केवल प्रजनन शक्ति का ही ह्रास होता है, अन्य का नही; वह असंतानीय (Infertile) तो अवश्य हो जाता है परन्तु नपुसक (Impotent) नहीं।

कुछ शोधकर्ताओं ने यहाँ तक कहा कि पुरुष नसबन्दी के बाद मनुष्य और भी अधिक Potent हो जाता है, और उसके कारण है—

1. संतान पैदा होने के भय का निवारण होना।

2. शुक्राणु पैदा करने वाले कोशों के नष्ट होने के बाद उनके स्थान पर दूसरे प्रकार के कोशों (Cells of Sertoli) का बढ़ना।

दोनो ही कारण सत्य भी हो सकते हैं लेकिन इतना अवश्य देखा गया है कि जो व्यक्ति इस आपरेशन की पूरी जानकारी के बाद अपना शल्य कर्म कराते हैं उनमें कोई हानि नहीं होती। परन्तु जो

जोर-जबरदस्ती या लालच से कराते हैं; वे अवश्य मानसिक रूप से अस्वस्थ हो जाते है।

1976 में, इमरजेन्सी के दिनों में शायद सरकार का पतन इसी कारण हुआ कि जनमानस को इस शल्य कर्म के लिए पूरी तरह जानकार नहीं बनाया गया। जन साधारण को लगा कि सरकार कुछ थोप रही है और चूँकि कुछ थोपा जा रहा है वह ठीक हो ही नहीं सकता। कितनी भ्रान्तियाँ उस समय देश में थीं — इस सम्बन्ध में केवल एक घटना ही लिखना पर्याप्त होगा।

सन् 1976 की गर्मियों की बात है — मैं अपने गाँव गया था। जहाँ मुझे परिवार का बूढ़ा नाई आरामी मिला। उसकी उम्र 60-65 वर्ष की होगी। कुपोषण (Malnutrition) से दुबला पतला, ढांचा मात्र, फिर उसे आँखों से कुछ दिखाई नहीं देता था। उसका सबसे छोटा लड़का करीब 20-22 साल का ही था। पटवारी जी उस पर जोर डाल रहे थे कि यदि वह अपनी नसबन्दी करा ले तो गाँव सभा की बची हुई 2 बीघा जमीन उसके नाम करवा देंगे। शासन के आदेशानुसार उन्हें नसबन्दी का अपना निर्धारित लक्ष्य पूरा करना था और जनता की आर्थिक विषमताओं को दूर करने के लिए गाँव की बची जमीन हरिजन व पिछड़े वर्ग के लोगों को देनी थी। आखिर पटवारी जी नसबन्दी के लिए व्यक्ति कहाँ से लाते। कोई तैयार ही नहीं होता था। हमारे आरामी भाई भी नहीं तैयार थे। वे डरते थे कि नसबन्दी हो गई और पटवारी जी ने पट्टा न कराया तो दोनों तरफ से मारे जाएँगे। शरीर भी गया जमीन भी न मिली। पटवारी जी अलग परेशान कि पट्टा कर दिया और नसबन्दी न कराई तो उनका लक्ष्य कैसे पूरा होगा। इसी उलझन में दोनों अपनी-अपनी जगह पर अडिग थे। गाँव में बैठकर दोनों की बातें सुनी।

दोनों के इष्ट मित्रों की बातें सुनी। आरामी को बहुत तरह से समझाने की कोशिश की कि उनके आयु व कुपोषण के कारण शुक्राणु तो बनते ही नहीं होंगे (Cells of Sertoli तो वे क्या समझते?)। मेरे समझाने व विश्वास दिलाने पर और गारंटी सी लेने पर वे तो तैयार हुए पर उनकी धर्मपत्नी अर्थात् हमारी भाभी जी नहीं मानीं और रोने धोने लगीं। (गाँव में रिश्ता केवल परिवार से ही नहीं होता था परन्तु परिवार के बाहर भी आयु के हिसाब से होता था — जैसे आरामी नाई मेरा भाई था और मिट्ठू धोबी हमारा चाचा — अब परिवार के साथ-साथ गाँव टूट रहे हैं और उसके साथ टूट रहे है ये नाते-रिश्ते)। खैर किसी प्रकार आरामी व उसकी पत्नी को समझाया गया। उनके आपरेशन से देश व समाज का क्या फायदा होना था— हाँ ! उन्हें दो बीघा जमीन अवश्य मिल गई जिसे वह जोत बो रहे है और प्रसन्न हैं।

अब तो हर गाँव में पार्टियाँ हैं और हर एक को काम देश, समाज या परिवार के कल्याण व सुविधा की दृष्टि से नहीं देखा जाता है। अब तो हर काम इस बात को ध्यान में रख कर देखा जाता है कि उसे किया किसने है। यदि काम को करने वाला अपने गुट का है या किसी प्रकार से शक्तिशाली है तो सब कुछ गलत होने के बाद भी काम ठीक है और यदि वह कमजोर है या विरोधी गुट का है तो उसके द्वारा किया हुआ अच्छे से अच्छा काम भी गलत होता है। अब तो अच्छे काम के लिए बड़ाई या शाबासी मिलना तो बहुत दूर की बात है; उसमें इतनी खामियाँ व चाल-बाजियाँ देख ली जाती हैं कि करने वाले ने उनको स्वप्न में भी न सोचा होगा।

इस नगर के एक वयोवृद्ध व प्रतिष्ठित डाक्टर ने एक चैरिटेबल संस्था की स्थापना की जिसका उद्देश्य था — विधवाओं,

अनाथो व विद्यार्थियो आदि की आर्थिक सहायता डाक्टर साहब चाहते थे कि यदि वे अपनी अर्जित धन राशि में से कुछ लोगों की आर्थिक समस्यायें अंशतः सुलझा सकें तो उनके लिए सौभाग्य की बात होगी। क्योंकि बचपन मे ही पिता को खो चुकने के बाद माँ ने कष्ट के साथ उन्हें पाल-पोस कर इस योग्य बनाया था तथा बचपन से ही इन्होंने गरीबी व कठिनाइयाँ झेली थीं। ट्रस्ट बनाने के बाद लोगों ने उसमें क्या-क्या बुराइयाँ नहीं देखीं, कोई कहता था कि यह आयकर बचाने की तरकीब है, कोई कहता था कि यह राजकीय सम्मान पाने के लिए है और कोई कहता था कि यह उनकी अपनी बिरादरी या वर्ग विशेष के लोगों की सहायता के लिए है। उनको मैं बहुत करीब से जानता हूँ। कितनी मानसिक अशान्ति उन्हें हुई थी — यह सब सुनने के बाद।

❑❑

महिला नसबन्दी
(TUBECTOMY)

आजकल पुरुष नसबन्दी की अपेक्षा महिला नसबन्दी का ही अधिक प्रचलन है — यद्यपि पुरुष नसबन्दी अधिक सरल आपरेशन है।

अण्डाशय (Ovary) में उत्पन्न डिम्ब (Ovum) फैलोपियन नलिकाओं (Fallopian Tubes) द्वारा गर्भाशय (Utreus) में पहुँचता है जहाँ वह अपने आहार इत्यादि का प्रबन्ध करता है। यहीं पर पुरुष शुक्राणु में से एक इससे संसर्ग करता है और गर्भाधान होता है। यदि अण्ड ले जाने वाले मार्ग को अवरुद्ध कर दिया जाय तो अण्ड गर्भाशय में नहीं पहुँच पायेगा और गर्भाधान भी सम्भव नहीं होगा और सन्तानोत्पत्ति भी नहीं होगी। महिला नसबन्दी इसी तथ्य पर आधारित है।

महिला नसबन्दी में महिला के पेट पर नाभि के नीचे एक छोटा सा चीरा लगा कर पेट खोल लिया जाता है और फिर उँगली की सहायता से टटोल कर फैलोपियन नलिका को बाहर की ओर खींच लाते हैं। फिर इसे दो स्थानों पर बाँध कर बीच से काट देते है। दो स्थानों पर इसलिए बाँधा व काटा जाता है क्योंकि स्त्रियों में अण्डाशय व फैलोपियन नलिकायें दो-दो (दायीं व बायीं) होती हैं। प्राय: नलिकाओं का एक अंश काट कर निकाल भी दिया जाता है। एक ही चीरे से एक-एक करके दोनों फैलोपियन नलिकाओं पर शल्य कर्म किया जाता है। बाद में चीरे के स्थान पर टांके लगा दिये

जाते हैं जो एक सप्ताह बाद काट दिये जाते हैं। इस शल्य कर्म के लिए पूर्ण रूप से संज्ञाहरण किया जाता है। इस शल्य कर्म के बाद यदि महिला पुन: गर्भवती होना चाहे तो यह असम्भव होता है।

लैप्रोस्कोप (दूरबीन) द्वारा महिला नसबन्दी (Laproscopic Sterilization)

यह एक मँहगा यन्त्र होता है। इसमें एक नली होती है जो पेट में अत्यन्त छोटा बटन के बराबर चीरा लगा कर अन्दर डाली जा सकती है। नली के अन्दर एक छोर पर लेन्स लगा होता है तथा दूसरे छोर पर शल्य चिकित्सक के देखने का प्रावधान होता है। नली की बगल में ही प्रकाश को अन्दर भेजने का भी प्रबन्ध होता है जिसके कारण पेट के अन्दर के अंग प्रकाशित होकर दिखते है। नसबन्दी करने वाले लैप्रोस्कोप में फैलोपियन नलिकाओं को अन्दर ही अन्दर बाँधने का यन्त्र भी इसी नली के अन्दर ही रहता है। प्रकाश प्रक्षेपण के स्थान से ही नली के माध्यम से पेट में हवा भर दी जाती है जिससे अन्दर के सभी अंग एक दूसरे से अलग-अलग व स्पष्ट रूप में दिखाई देते हैं। लैप्रोस्कोप द्वारा ही फेलोपियन नलिकाओं को बारी-बारी से पहचान कर अन्दर ही अन्दर उन्हे बाँध दिया जाता है। बाँधने के बाद पेट में भरी हवा निकाल दी जाती है तथा चीरे में एक टाँका लगा दिया जाता है। लैप्रोस्कोपी द्वारा नसबन्दी कराने का सबसे बड़ा लाभ यह है कि अत्यन्त छोटा शल्य कर्म होने के कारण पूर्ण संज्ञाहरण की आवश्यकता नही पड़ती और महिला शल्य कर्म के कुछ ही घण्टे बाद अपने घर वापस जा सकती है।

❑❑

हाइड्रोसील या अण्डकोष में पानी भरना
(HYDROCELE)

हाइड्रोसील नामक रोग से अधिकांश लोग परिचित होंगे। बहुत से लोग तो इस रोग से पीड़ित भी होंगे। इस रोग में अण्डकोष (Scrotum) में एक प्रकार का जलीय पदार्थ संचित हो जाता है जिससे अण्डकोष फूल कर बड़ा हो जाता है। अन्य कई कारणों से जैसे फाइलेरिया आदि से भी अण्डकोष में जल सञ्चय हो जाता है पर अधिकतर रोगियों में इसका कारण ज्ञात नहीं होता है। अण्डकोष के बढ़ जाने के अतिरिक्त अन्य कोई तकलीफ नहीं होती है, पर कुछ लोगों में दर्द हो सकता है। यों तो अधिक पानी भर जाने पर मनुष्य की जनन क्षमता पर असर पड़ सकता है पर ऐसा बहुत कम सख्या में होता है। अत्यधिक वृद्धि होने से चलने में दिक्कत हो सकती है तथा कपड़े के ऊपर से बेडौल व भद्दा सा प्रतीत होता है। इसकी शल्य क्रिया करवा लेने से यह हमेशा के लिए ठीक हो जाता है तथा इससे हो सकने वाले दुष्प्रभावों से बचाव हो जाता है।

यद्यपि एक मोटी सुई को अण्डकोष में प्रविष्ट कराकर सञ्चित जलीय पदार्थ को निकाला जा सकता है परन्तु ऐसा करने से रोगाणुओं के अण्डोष में प्रविष्ट हो जाने की बड़ी आशंका रहती है जिसके परिणाम घातक हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त इस रोग की पुनरावृत्ति भी हो सकती है। अत: इसके होने पर इसकी शल्य क्रिया ही करवा डालनी चाहिए।

इसकी शल्य क्रिया एक मामूली सी शल्य क्रिया होती है जो अस्पताल में भरती हुए बिना भी हो सकती है। इसमें रोगी का मात्र स्थानीय संज्ञाहरण का उपयोग करके ही यह शल्य क्रिया की जाती है।

आँत उतरना
(HERNIA)

इस रोग के बारे में काफी लोग जानते हैं। पेट के निचले भाग में दायें व बायें (कभी-कभी दोनों तरफ) भाग में सूजन आ जाती है। यह सूजन खाँसने, पाखाना फिरने में जोर लगाने या वचन उठाने से बढ़ जाती है और लेटने पर कम हो जाती है।

पेट में कुछ छिद्र पाये जाते है जो स्वस्थ व्यक्ति मे बन्द होते हैं परन्तु हार्निया के रोगी में मांसपेशियों की कमजोरी के कारण खुल जाते हैं और इस छिद्र के द्वारा आंत या आंत की झिल्ली पेट से निकल कर त्वचा के नीचे ही नीचे अण्डकोष की तरफ उतरने लगती है। कभी-कभी रोगी स्वयं ही अपनी सूजन कम करने मे समर्थ होता है। वह हाथ से सहारा देकर आंत को वापस पेट मे ढकेल देता है जिससे सूजन कम हो जाती है। रोग के अधिक बढ़ने पर कभी-कभी आंत इस तरह से फँस जाती है कि वापस पेट मे नहीं डाली जा सकती है। और अधिक बढ़ने पर आंत पर दाब पड़ने से भोजन इत्यादि आंत में ही रुक जाता है जिसे इन्टेस्टाइनल आब्सट्रक्शन (Intestinal Obstruction) कहते हैं। इससे रोगी को पेट दर्द, सूजन, उल्टी तथा कब्ज की शिकायत हो जाती है। यदि इस अवस्था में भी शल्य क्रिया द्वारा इसका उचित निदान न किया गया तो फँसी हुई आंत में उपस्थित रोगाणु उसमें फलने-फूलने लगते हैं तथा विभिन्न प्रकार के विष उत्पन्न करते हैं। इन विषों के शरीर में फैल जाने से पेरीटोनाइटिस नामक रोग हो जाता है तथा

रोगी की मृत्यु भी हो सकती है।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हार्निया की बीमारी की जानकारी होते ही उसकी शल्य क्रिया करा लेनी चाहिए अन्यथा दुष्प्रभावों के उत्पन्न हो जाने के बाद शल्य क्रिया के परिणाम भी उतने अच्छे नहीं रह जाते हैं।

हार्निया की शल्य क्रिया के लिए अस्पताल में भरती होना व भली भाँति जांच आदि कराना आवश्यक होता है। शल्य क्रिया के लिए रोगी को सम्पूर्ण संज्ञाहरण या क्षेत्रीय संज्ञाहरण की आवश्यकता होती है। संज्ञाहरण के पश्चात् शल्य क्रिया में तनिक भी दर्द का अनुभव नहीं होता है। शल्य क्रिया के पश्चात् रोगी को लगभग एक सप्ताह तक अस्पताल में रोका जाता है। उसके बाद रोगी को घर जाने की अनुमति दे कर कुछ दिनों तक आराम करने की सलाह दी जाती है। हार्निया के रोगी को आपरेशन के पश्चात् कुछ माह तक वजन न उठाना चाहिए अन्यथा टांके टूटने की संभावना रहती है जिसके परिणामस्वरूप रोग पुनः हो सकता है।

❑❑

चोट लगने पर पट्टी

(Splintage)

शायद इस देश में हम में से प्रत्येक व्यक्ति चिकित्सक है। किसी ने तो यहाँ तक कहा है कि इस देश की 68 करोड़ जनता मे 70 करोड़ चिकित्सक हैं। 68 करोड़ तो आज के निवासी हैं व 2 करोड़ वे जो अभी या तो माँ के पेट में हैं या बाद में आयेंगे। प्रत्येक व्यक्ति किसी भी प्रकार की बीमारी होने पर हर किसी को मुफ्त सलाह देने को तैयार रहता है, चाहे रोगी को आवश्यकता हो या न हो; चाहे रोगी उस सलाह को माने या न माने। देखने वाले मित्र, पड़ोसी और यहाँ तक कि रास्ता चलने वाले व्यक्ति भी अपनी सलाह देते जायेंगे। अरे साहब, पड़ोस के शर्मा जी के छोटे लड़के को चोट लगी थी — डाक्टर साहब ने प्लास्टर चढ़ाने को कहा लेकिन वो जो फलाँ मुहल्ले के पहलवान हैं न; उन्होंने तो दो दिन मे ही आमा हल्दी, चोट सज्जी बांधी और चोट बिल्कुल ठीक। कोई कहेगा आयोडेक्स मलिए और कोई बैगन का भुरता बाँधने की सलाह देगा, कोई कहेगा अरे साहब, सहजन की पत्ती देशी घी गर्म करके बांधिये 4-5 दिन में ही चोट गायब। अधिकांशत: ये बाते गलत हैं। क्यों गलत हैं इसका स्पष्टीकरण हम आगे दे रहे है।

लेखक सन् 1981 की गर्मियों में काश्मीर में फिसल जाने की वजह से टखने (Ankle) में चोट खा गया — हड्डी टूटी थी, सोचा क्यों न काश्मीर के नीम हकीमों से अपना इलाज करवाया जाय। पहाड़ के रहने वालों को तो चोट लगती ही रहती होगी और उन्हें चोटों व हड्डी टूटने का अनुभव भी अधिक होगा। डाक्टर तो

फौरन कच्चा प्लास्टर बॉधने की सलाह देगा, एक्सरे करायेगा और फिर फैक्चर सेट करवाने के लिए श्रीनगर जाने की सलाह देगा। सोचा कि हो सकता है इस तरह इलाज करवाने से कोई नुस्खा या तरकीब मिल गई तो अपना जीवन सार्थक हो जाएगा। देश विदेश मे चट-पट ख्याति हो जाएगी — ठीक उसी फ्रांसीसी चिकित्सक की तरह जो गुर्दे की धमनियों व शिराओं को काट दिया करता था और फिर विदेश से आये अतिथियों के साथ मौसम की चर्चा किया करता था। खैर हड्डी बैठाने वाले बड़े नामी गिरामी सज्जन को बुलाया गया। वे आये — टखना इधर-उधर हिलाकर देखा और फतवा दे दिया कि जरा सी चोट है — हड्डी नहीं टूटी और ऐसी चोट कुछ दिनों पहले प्रसिद्ध सिनेतारिका रेखा को लगी थी और उन्होंने उसे दो दिन में ही ठीक कर दिया था। शूटिंग भी शायद 2-4 घंटे के लिए ही बन्द रही थी। इसी प्रकार उन्होने कई प्रसिद्ध सिनेमा अभिनेताओं, अभिनेत्रियों व अन्य प्रसिद्ध हस्तियों की चर्चा की। उन्होंने यह भी बताया कि धर्मेन्द्र को भी ऐसी ही चोट लगी थी। उसने उनकी बात न मानी और फौरन बम्बई वापस लौट गया। और यह उन्हीं की बात न मानने का परिणाम है कि वह आज भी लगड़ा कर चलता है। खैर, उन्होने टखने को खूब हिला-डुला कर देखा और बताया कि एक विशेष जड़ी लाने के लिए उन्हें ऊपर पहाड़ पर जाना पड़ेगा। मरता क्या न करता। फौरन मंजूरी दे दी और जो कुछ भी मेहनत का मुआवजा हो उसको देने का वायदा कर दिया। कुछ समय बाद वे आये। कोई घास पीस कर तेल में गर्म करके बांध दी और फिर पैर की उंगलियों में उनके हिसाब से एक खास प्रकार की रस्सी से खिंचाव दिया। उनकी यह स्पेशल रस्सी शायद घोड़ो को बॉधने के काम में आती रही होगी। यह सब करने

के बाद उन्होंने खासी बड़ी रकम जो डाक्टरों की फीस से कही अधिक थी; और शाम को आने का वादा करके के चले गये। दर्द ज्यो का त्यों ही रहा, हाँ शायद उनके लेप लगाने व अच्छी तरह पट्टी करने के कारण कुछ कम ही मालुम हुआ। यह बात सत्य है कि ये नीम हकीम, पहलवान, हड्डी बिठालने वाले पट्टी बहुत अच्छी बाँधते हैं। शायद हमारे प्रशिक्षित डाक्टर बन्धु पट्टी बॉधने मे अपनी तौहीन समझते हैं। वे सोचते हैं कि एम.बी.बी.एस. करने के बाद पट्टी बाँधना उनका कार्य नही है और वे इस काम को अपने कम्पाउंडर, वार्ड ब्वाय या अन्य लोगों पर छोड़ देते हैं।

हमारे नीम हकीम साहब शाम को फिर आये। अपने पिछले महापुरुषों या बड़े लोगों के बारे में किस्से (मेरे ख्याल से झूठे) नामक मिर्च लगा कर सुनाये, लेप लगाया, फीस ली और चल दिए। परन्तु चलते-चलते चेतावनी देना नहीं भूले कि यदि किसी डाक्टर को दिखा दिया तो फौरन प्लास्टर लगा देगा, चाहे उसकी आवश्यकता हो या न हो। हमने बड़े धीरे से डरते-डरते बताया कि हम भी डाक्टर हैं। बस वे डाक्टरों, हड्डी की चोटों व उनके अज्ञान की बातें बताने लगे। फलाँ को प्लास्टर लगाया गया और उसके नासूर हो गया। फलाने के पैर में प्लास्टर चढ़ाया गया था सो पैर अभी तक पतला है। अगर हवा नहीं जायगी तो हाथ पैर क्या सूख नही जाएँगे? सुनता रहा। एक मिनट को लगा कि क्या हमने जो कुछ भी सीखा है, किया है या कर रहे हैं बिलकुल असत्य है, धोखा है? और हमारे नीम हकीम साहब जो कुछ भी कह रहे हैं, यही बिल्कुल सत्य है।

दूसरे दिन फिर लेप, पट्टी व खिंचाव की प्रक्रिया दोहराई गई शाम जब वे फिर आये तो हमने उन्हें धीरे से बताया कि हम भी

हड्डी के ही डाक्टर है। बस फिर क्या था, हमारे गुलाम रसूल साहब का प्रवचन चालू। "अगर आप हड्डी के डाक्टर हैं तो सिर्फ प्लास्टर ही नहीं करेंगे, आपरेशन भी कर डालेंगे। और उन्होंने अपनी 15-20 कहानियां सुना डालीं। सुन कर हमें लगा कि हमारा ज्ञान बेकार है और हमारे गुलाम रसूल जी बिल्कुल सही हैं। उनकी बातों में इतनी दृढ़ता और विश्वास था। साथ ही कहने का लहजा इस तरह का था कि हमें लगा जो कुछ वे कह रहे है; बिल्कुल सत्य है और जो कुछ हमने सीखा है या कर रहे हैं: असत्य है।

खैर तीसरा दिन हुआ और उसके हिसाब से हमें खड़ा हो जाना चाहिए था परन्तु खड़ा होना तो दूर अभी दर्द मे भी कोई अन्तर नहीं आया था। उसी दिन हम श्रीनगर पहुँचे वहाँ पर इलाज हुआ।

साधारण चोटें (Minor Injuries)

साधारण चोटें वे हैं जिनमें जोड़ के कुछ ही तन्तु टूटते है या मास-पेशियों में चोट आती है। इन चोटो में जो भी उपचार किया जाये चाहे लेप लगाये, चाहे मालिश करें, चाहे प्लास्टर लगायें, चाहे पट्टी बँधवायें, ये अपने आप ही और अपने स्थान पर ही ठीक हो जाते है और कोई भी विकृति नही रह जाती है। वैसे सबसे अच्छी व कारगर चिकित्सा होगी कि यदि चोट लगने के तुरन्त बाद उस पर बर्फ रख दी जाय या बर्फ की सिंकाई कर दी जाय और आहत भाग पर पट्टी बॉध दी जाय ताकि आहत भाग को आराम मिल सके। चोट लगने के 3-4 दिन बाद गर्म पानी में नमक या फिटकिरी डाल कर सिंकाई की जा सकती है।

यह देखा गया है कि चोट लगने के बाद प्राय: किसी न किसी वस्तु से मालिश की जाती है और इसमें सबसे अधिक

भ्रांतिया पैदा हुई है समाचार पत्रो व रेडियो पर किये जाने वाले प्रचार से। 'आयोडेक्स मलिए और काम पर चलिये' — यह भ्रामक है। कोई भी लेप टूटे या क्षत भाग का पुनर्निर्माण नहीं कर सकता। इसके लिए तो आवश्यक है शरीर के तन्तुओं (Tissues) को अपनी मरम्मत (Repair) करने का समय, अगर यह चोट बहुत ही मामूली है तो कम समय लगेगा और यदि गंभीर है तो अधिक समय लगेगा। आप में से हर कोई कहेगा कि उसने इस लेप या उस लेप से फायदा देखा और सुना है — क्या उसका अपना व्यक्तिगत अनुभव गलत है? और जो चीज खुद परीक्षित हो; वह गलत कैसे हो सकती है। आपका यह कहना व सोचना बिल्कुल सत्य है। ये औषधियाँ अपना कार्य दो प्रकार से करती हैं। आपने देखा होगा कि इन दवाओं के लगाते ही लगाये स्थान पर लाली या सुर्खी आ जाती है तथा कुछ चुनचुनाहट सी महसूस होती है। यह होता है इन लेपो मे उन द्रव्यो के कारण जो प्रतिक्रियात्मक जलन (Counter Irrita-tion) पैदा करते हैं तथा जिसको आप खून के दौरान में तेजी समझते हैं वह केवल लेप लगाये हुए स्थान की खाल तक ही सीमित रहता है। दर्द कम होने का कारण भी टूटे हुए तन्तुओं की मरम्मत न होकर दर्द की सूचना मस्तिष्क तक पहुँचाने वाली नाड़ियों (Nerve Impulses) का भ्रमित हो जाना है। इन लेपो के दूसरे फायदे का कारण लेप लगाने के बाद की पट्टी है जिससे तन्तुओं को आवश्यक आराम मिलता है और मरम्मत के कार्य की शुरूआत हो जाती है।

कृपया ध्यान रक्खें कि 'आराम' का अर्थ पलंग या बिस्तर पर लेटना नहीं है यहाँ आराम का अर्थ है क्षत भाग का कम से कम प्रयोग।

अधिकांश चोटें 5–7 दिन में ठीक हो जाती हैं यदि इतने समय में पीड़ा व सूजन समाप्त न हुई हो या चलने फिरने में कष्ट हो तो चोट साधारण न होकर गंभीर किस्म की है और चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए।

गम्भीर चोटें (Serious Injuries)

गंभीर चोटों में नस या हड्डी का टूट कर अपने स्थान से हट जाना या सिर, गर्दन सीना इत्यादि में चोटें हैं। यदि केवल हड्डी ही टूटी है तो जो भी सामान अर्थात् लकड़ी, फुटा आदि मिले उसकी सहायता से अंग को रुई से लपेट कर बांधना चाहिए। ध्यान रहे कि गांठें न तो अधिक कसी हों और न अधिक ढीली। अधिक ढीली रहने पर चोट खाया भाग हिल सकता है और दर्द हो सकता है — अधिक कसी होने पर शिराओं में रक्त का प्रवाह धीमा पड़ जाएगा और हाथ पैर में सूजन आ जाएगी। अतः यदि पट्टी बांधने के बाद अंगों में सूजन हो या अधिक दर्द हो, या उंगलियाँ नीली पड रही हों या उगलियाँ चलाने में कष्ट महसूस हो रहा तो शीघ्रतिशीघ्र चिकित्सा करानी चाहिए क्योंकि ये गंभीर चोट की सूचक हैं।

इसी प्रकार अगर सिर पर चोट लगने के बाद आदमी मूर्छित हो गया हो और यह मूर्छा 5 मिनट से अधिक की हो तो यह सिर या मस्तिष्क (Head or Brain Injury) की चोट की सूचक है। अधिकांश लोगों में तो यह साधारण लक्षण पैदा करती है और पूर्ण रूप से ठीक हो जाती है। लेकिन यदि मस्तिष्क के अन्दर खून जमा हो रहा हो, नाक या कान से खून आ रहा हो या बेहोशी की अवधि बढ़ रही हो तो उचित उपचार की व्यवस्था की जानी चाहिए। इस प्रकार की चोटों में घरेलू उपचार अथवा नीम हकीम से सलाह लेना जीवन के लिए घातक हो सकता है।

टूटी हुई हड्डी का पुनर्स्थापन (Fracture Reduction)

बढ़ते हुए मशीनीकरण व मोटर गाड़ियों के प्रचलन के कारण दुर्घटनाओं की संख्या काफी बढ़ गई है। हल्की चोटें तो केवल मुलायम भागों तक ही सीमित रहती हैं पर अधिक जोर की चोट लगने पर शरीर के ढाँचे अर्थात् अस्थियों पर दुष्प्रभाव पड़ता है अर्थात् वे दो या अधिक टुकड़ों में टूट जाती हैं। यदि टूटी हुई हड्डी के ऊपर घाव नहीं है तो यह साधारण बन्द अस्थिभग, (Closed/Simple Fracture) कहलाता है और यदि टूटी हुई हड्डी घाव के बाहर दिखने लगती है तो इसे कम्पाउन्ड फ्रैक्चर (Compound/open Fracture) कहते हैं।

कम्पाउण्ड फैक्चर में सबसे पहले घाव को कीटाणु विहीन किया जाता है और तत्पश्चात् ही टूटी हुई हड्डी का विशेष उपचार किया जाता है।

साधारण फ्रैक्चर में यदि हड्डी के टूटे हुये टुकड़े एक दूसरे के सम्पर्क (Contact) में नहीं हैं अर्थात् विस्थापित (Displaced) हैं तो हड्डी जुड़ने (Non-Union) के साथ-साथ टूटे हुए भागों के बीच में हलचल भी होने लगती है तथा शरीर के बहुत से जोड़ों की भाँति एक नकली जोड़ (Pseudoarthrosis) बन जाता है।

यदि टूटी हुई हड्डी के दोनों टुकड़े परस्पर सम्पर्क में है परन्तु उनके बीच घुमाव (Rotation) या झुकाव (Angulation) हो तो इसी स्थिति में हड्डी टेढ़ी जुड़ जाती है। (Mal-union) जिससे उस भाग में टेढ़ापन (Deformity) हो जाता है तथा उक्त भाग के ऊपर नीचे वाले जोड़ों में होने वाली हलचलें कम हो जाती हैं।

इन सब बातों से स्पष्ट हो जाता है, कि टूटी हुई हड्डी मे विस्थापन, घुमाव व झुकाव को ठीक करना अनिवार्य है। इन ही

सबको दूर करके टूटे हुये टुकड़ों को फिर से संरचनात्मक सम्पर्क में लाने को रिडक्शन (Reduction) कहते हैं। आम बोलचाल की भाषा में इसे हड्डी बैठाना कहते हैं।

रिडक्शन के लिए सम्पूर्ण संज्ञाहरण की आवश्यकता पड़ती है जिससे पीड़ा न हो तथा शरीर की मांसपेशियों में तनाव न रह जाय और रिडक्शन किया जा सके। रिडक्शन एक योग्य चिकित्सक से ही कराना चाहिए क्योंकि नीम-हकीम जिन्हें शरीर की संरचना का समुचित ज्ञान नहीं होता है, अधिकांशतः सही ढंग से व सही स्थान पर हड्डी पुनर्स्थापित नहीं कर पाते हैं। साथ ही कुछ भागों की हड्डी के सान्निध्य में महत्वपूर्ण रक्त वाहिनियाँ तथा स्नायुतंत्र होते हैं जो दुर्घटना में तो बच गये परन्तु रिडक्शन के समय चोट खा सकते हैं।

रिडक्शन के बाद यदि उक्त भाग को यूँ ही छोड़ दिया जाय तो वह पुनः विस्थापित हो सकता है। अतः यह आवश्यक होता है कि उक्त भाग को तब तक उसी स्थिति में रखा जाय जब तक कि हड्डी न जुड़ जाय। इसके लिए प्लास्टर आफ पेरिस (Plaster of Paris) का प्रयोग करते हैं।

प्लास्टर आफ पेरिस एक विशेष प्रकार के पत्थर का चूरा होता है जो गीला होने पर तो लेई के रूप में रहता तथा मनचाहे आकार में ढाला जा सकता है परन्तु सूखने पर यह पत्थर की भाँति कड़ा हो जाता है। इस पाउडर को पट्टियों पर पतली समतल परत मे फैला दिया जाता है और पट्टी गोल करके लपेट ली जाती है फिर पानी में भिगो कर यह शरीर के जिस भाग पर बाँध दी जाती है। उस भाग की शक्ल धारण कर लेती है। सूखजाने के पश्चात् यह बहुत कड़ी हो जाती है तथा काफी समय के लिए उसी आकार में रह

जाती है। फ्रैक्चर का रिडक्शन करने के बाद उस अंग को उसी स्थिति में रख कर उस पर प्लास्टर की भीगी पट्टी बाँध देते हैं और तब तक उसी स्थिति में रखते हैं जब तक प्लास्टर सूख न जाय। इस प्लास्टर को एक वांछित समय तक लगा रहने देते हैं। अलग-अलग भागों के लिए अलग-अलग समय निश्चित होता है। मोटे तौर पर हाथ की हड्डियों के लिए 6 सप्ताह का तथा पैर की हड्डियो के लिए 12 सप्ताह का समय निश्चित किया जाता है। पर अलग-अलग उम्र, में अलग-अलग लिंग में तथा अलग-अलग व्यक्तियो मे यह समय बदल सकता है। जिसका निर्णय शल्य चिकित्सक ही ले सकता है।

प्लास्टर लगे अंग के लिए यह आवश्यक है कि जो जोड़ प्लास्टर के अन्दर नहीं होते हैं, उनकी हलचल होती रहे अन्यथा मासपेशियां सिकुड़ जाती हैं (Muscle Contraction) और जोड़ों की हलचल कम (Joint Stiffness) हो जाती है।

प्राय: देखा गया है टूटी हड्डी का एक्सरे लेकर मरीज या उसके अभिभावक एक चिकित्सक से दूसरे के पास जाते हैं क्योंकि उनके विचार से हड्डी ठीक तरह से नहीं बैठी है। और वे स्वय देख रहे हैं कि हड्डी के टुकड़े चूल से चूल में नहीं बैठे हैं। अस्थि भग एक जीवित अस्थि में होता है और जब हड्डी टूटती है तो केवल हड्डी ही नहीं टूटती पर हड्डी के सभी भाग जिसमें रक्त वाहिकाएँ भी शामिल हैं और हड्डी के आसपास की मांस पेशियाँ भी टूटते हैं जो शायद हड्डी से ज्यादा महत्वपूर्ण हैं; उनके बारे मे न तो रोगी, न अभिभावक और न ही प्राय: चिकित्सक चिन्ता करते है। हड्डी जीवित होने के कारण एक विशेष स्वाभाविक प्रक्रिया द्वारा पुन: जुड़ती है और इसके लिए आवश्यक नहीं है कि अस्थि

भग के सभी टुकड़ों को चूल से चूल बैठाया जाता। यह सत्य है कि चूल से चूल बैठाने (Anatomic reduction) की आवश्यकता कुछ विशेष परिस्थितियों में होता है, तब आपरेशन द्वारा खोलकर केवल बैठाया ही नहीं जाता, परन्तु Screw और प्लेट आदि से Fix कर दिया जाता है। यह केवल चिकित्सक ही जानता है कि अस्थि भग कब प्राकृतिक प्रक्रिया द्वारा ठीक जुड़ सकेगी या शल्य क्रिया द्वारा। एक्सरे मे अस्थि भंग के टुकड़े अलग-अलग होने पर शल्य क्रिया आवश्यक नहीं है।

❑❑

शल्य क्रिया और रक्त आरोहण

Surgery and Blood Transfusion

आधुनिक शल्य क्रिया में निश्चेतन (Anaesthesia), रोगाणु विहीनीकरण (Asepsis), नवनिर्मित दवायें एवं एन्टीबायटिक्स के साथ ही एक और उपाय जिसने शल्य क्रिया को काफी निरापद बना दिया है वह है रक्त आरोहण। इसका सबसे पहले प्रयोग कुत्तों पर किया गया था। लोगों का प्रायः विश्वास है कि सगे भाई बहनों का रक्त एक सा होता है अथवा रक्त देने और रक्त पाने वाले व्यक्ति सहोदर हो जायेंगे। यह बात वैज्ञानिक तौर पर ठीक नहीं है। पूरे मानव समाज के रक्त को 4 वर्गों में बाँटा जा सकता है और वे 'ए', 'बी', 'एबी', और 'ओ' के नाम से जाने जाते है। और यदि किसी के रक्त का वर्ग 'ए' है तो उसके भाई या बहन के रक्त का वर्ग 'ओ' हो सकता है। इसके अतिरिक्त रक्त को दो विशेष प्रकार के भागों में भी बांटा गया है और ये अंश सबसे पहिले बन्दर के रक्त मे पाया गया था जो रीसस (Rhesus) या आर-एच फैक्टर कहलाता है। हमारे देश में 90% आर-एच. पाजिटिव (Rh+) व 10% आर-एच नेगेटिव (Rh-) है। इसका अर्थ यह नहीं है कि आर-एच पाजिटिव वाले बन्दरों के वंशज या उत्तराधिकारी हैं। यह तो रक्त में एक विशेष प्रकार के पदार्थ के कारण होता है। इसी प्रकार दो बड़े वर्गों के अलावा छोटे (Minor) एम, एन, ओ (M, N. O.) वर्ग भी हैं। यह अत्यन्त आवश्यक है कि रक्त देने व पाने वाला एक ही रक्त वर्ग के हों।

आज से कुछ समय पूर्व तक 'ओ' वर्गीय रक्त को सार्वभौमिक दाता (Universal Donor) समझते थे क्योंकि यह अन्य रक्त वर्ग वालों को भी दिया जा सकता था। इसी प्रकार 'एबी' वर्ग वालों को सार्वभौमिक प्राप्त कर्ता (Universal Recipient) माना जाता था परन्तु अब ऐसा नहीं माना जाता है और अब केवल गंभीर अवस्था में जब अपने वर्ग का रक्त न मिल रहा हो तब इस प्रकार के वर्गों का रक्त आरोहण किया जाता है। इसी प्रकार आर-एच नेगेटिव में आर-एच पाजिटिव का रक्त आरोहण केवल विषम परिस्थितियों में ही किया जाता है। उदाहरणार्थ यदि किसी आर-एच नेगेटिव वर्ग वाली महिला को आर-एच पाजिटिव वर्ग का रक्त दिया गया है तो उसे गर्भ धारण करने में कष्ट होगा और गर्भपात (Abortion) की पूरी संभावना रहेगी।

इसी प्रकार लोगों में भ्रम है कि शायद शरीर में बहुत थोड़ा सा रक्त है। चोट लगी — थोड़ा सा खून बहा और हल्ला मचा कि चोट लगने से अमुक व्यक्ति पीला पड़ गया — रक्तविहीन हो गया। शायद आपको यह जानकर सुखद आश्चर्य होगा कि आपमें अपने भार का 1/13 भाग रक्त है। इस प्रकार यदि आप का भार 65 किलो है तो उसमें से 5 किलो रक्त है जिसका 2/3 भाग सक्रिय परिभ्रमण (Active Circulation) में है व 1/3 भाग आरक्षित रूप (Reserve) में पड़ा रहता है। यह आरक्षित भाग तिल्ली (Spleen) यकृत (Liver) व कुछ अंशों में मांस-पेशियों में रहता है। शरीर को आवश्यकता पड़ने पर यह आरक्षित रक्त भी सक्रिय परिभ्रमण में आ जाता है — जैसे चोट लगने के बाद रक्त निकलने पर या रक्त की कमी के कारण अथवा दौड़ने, भागने पर या शरीर की किसी आपातकालीन स्थिति में। अब आप इससे यह भी समझ गये होंगे

कि लगभग $1\frac{1}{2}$–2 लीटर तक रक्त निकलने के बाद भी जीवनहानि की आशंका नहीं है। इससे एक बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि जब आप किसी और के लिए रक्तदान करते हैं तो जीवन के किसी भी कार्य कलाप में बाधा नहीं पड़ती है। एक यूनिट रक्त का आयतन 300 मि०ली० होता है क्योंकि 500 मि०ली० (1/2 लीटर) आयतन वाली बोतल मे लगभग 75 मिली. (Preservative) प्रिजर्वेटिव होता है। इतना रक्तदान एक स्वस्थ पुरुष के लिए किसी भी तरह से हानिकारक नहीं है और आरक्षित रक्त तुरंत इस कमी को पूरा कर देता है।

यह किसी भी अस्पताल की रोज की कहानी है कि जहाँ रोगी के लिए रक्त आरोहण या रक्त दान की बात की, रोगी के सगे सम्बन्धी मित्र आदि एक दूसरे का मुँह देखने लगते हैं।

अभी कुछ दिन पूर्व एक 23 वर्षीय युवती Obstructed Labour अर्थात् शिशु जन्म में बाधा के साथ अस्पताल में भरती हुई। बेचारी भयंकर पीड़ा में थी तथा काफी रक्तस्राव हो चुका था। बिल्कुल पीली; जैसे उसके शरीर का सारा ही रक्त निचुड़ गया हो। रक्तचाप काफी कम व श्वांस की प्रक्रिया बहुत तेज — चिकित्सक के सामने प्रश्न था माँ व बच्चे को बचाने का और यह तभी संभव था जब कि शल्य क्रिया की जा सकती। नमक, शर्करा-नमक का घोल तथा रक्त का आयतन बढ़ाने वाले द्रव्यों से उसका काम नही चल सकता था क्योंकि रक्त आयतन (Blood Volume) के साथ-साथ हीमोग्लोबिन भी चाहिए था। सम्बन्धियों से कहा गया। पति तैयार भी हुआ लेकिन उस स्त्री की सास या पति की माँ ने बवंडर खड़ा कर दिया — उसका पुत्र अपनी पत्नी के लिए खून न दे क्योंकि बेटे को कुछ हो गया तो क्या होगा। डाक्टरों ने बड़ा

समझाया लेकिन मां अडिग वह शायद सोचती थी कि यदि पत्नी मर भी गई तो शायद परिवार को कोई भी हानि होने की संभावना नही। फिर से पत्नी आ जाएगी और आयेगा दान-दहेज। एक स्त्री दूसरी स्त्री के प्रति कितनी निर्दयी हो सकती है। अपने बेटे तथा दूसरे की बेटी में इतना फर्क? यह फर्क अपने या पराये का था अथवा यह था इस देश के पुरुष और नारी का फर्क। आप इसे कुछ भी कहें — यह सत्य है और यह अपने समाज के लिए कलंक की बात है। शायद हमारे समाज में जीवन का अर्थ केवल उसकी आर्थिक उपयोगिता मात्र रह गया है। क्या जीवन के मूल्य व आदर्श केवल दूसरों को सुनाने के लिए रह गये हैं? उस स्त्री का क्या हुआ— पाठकगण स्वयं सोच सकते हैं।

रक्त आरोहण व रक्त दान का एक सामाजिक पहलू भी है जो है तो विचित्र परन्तु सत्य। कभी-कभी चिकित्सक इसे रोगियों के साथ आने वाली अनियंत्रित भीड़ को नियन्त्रण में लाने के लिए प्रयोग करते हैं।

युनिवर्सिटी के एक छात्र नेता को चोट लगी — उन्हें हुआ था Compound Fracture, साथ में थी हजारों की भीड़, जो बढ़ती ही जा रही थी। उपचार करना तो दूर उन तक पहुँचना भी मुश्किल था। बेचारी नर्स तो इन्जेक्शन आदि क्या लगाती। बस एक नुस्खा याद आया। फौरन घोषणा की गयी कि नेताजी की चोटे गम्भीर हैं — (चिकित्सा विधि विज्ञान — Forensic Legal Medicine के अनुसार टूटी हड्डी (Fracture) गम्भीर चोट हैं) और उन्हें चार यूनिट रक्त की शीघ्र आवश्यकता है। अतः जो भी नेता जी को अपना रक्त देना चाहें अपना नाम लिखायें व रक्त बैंक तक जायें। तुरंत ही हजारों की भीड़ १०-२० की रह गई। धीरे-धीरे

लोग अस्पताल के बाहर खिसकने लगे। जब नाम लिखाने का नम्बर आया तो बचे ले देकर सात। जब इन सातों को एक कर्मचारी रक्त कोष की तरफ लेकर चला तो वहाँ पर एक भी व्यक्ति न पहुँचा। किसी को जरूरी काम आ गया किसी के पूज्य पिता जी गाड़ी से वापस आ रहे थे; किसी को लघुशंका व दीर्घशंका का प्रकोप हो गया और किसी को पेट का दर्द। कुछ देर पहले जो भीड़ नेता जी के लिए सर्वस्व देने को तैयार थी और कुछ भी करने को तैयार थी वह या तो अपने घर पहुँच चुकी थी या फिर शहर के काफी हाउस में?

नेता जी हृष्ट-पुष्ट थे व रक्त हानि भी अधिक नहीं थी। उनका आपरेशन बिना रक्त के ठीक तरह से सम्पन्न हो गया। छात्र नेता अब और बड़े नेता हो गये हैं। जब भी वे सामने पड़ते हैं मुझे 15 वर्ष पूर्व की घटना याद आ जाती है। लेकिन साथ में ही एक दु:ख होता है कि कितना अज्ञान है हमारे देश में। जब पढ़े लिखे लोगों का यह हाल है तो बिना पढ़े लिखे लोगों की तो बात ही करना बेकार है।

अभी तक हमने रक्त आरोहण की बात की है। इसमें अन्य कठिनाइयों के साथ-साथ रोगों के संवाहन (Transmission of diseases) का भी खतरा आगे आ गया है। एड्स (Ante Immune Deficiency Syndrome) नामक भयंकर रोग ने तो विकसित देशों की जड़ें हिला दी हैं। क्योंकि ये रोग प्राय: समलैंगिक सहवास (Homo Sexuality) नशे की सुई लगाने वाले तथा रोगी से रक्त आरोहण की वजह से होता है और अभी तक इसकी कोई चिकित्सा नहीं है और रोगी तिल-तिल कर मरता है।

रक्त आरोहण से बचने का सबसे अच्छा उपाय है। शल्यक्रिया में अपने ही रक्त का आरोहण अर्थात् शल्य क्रिया से 3 सप्ताह पूर्व रोगी अपना रक्त निकलवा लेता है। पौष्टिक आहार और रक्त

बनानेवाली दवाओं से ये कमी शीघ्र अतिशीघ्र पूरी हो जाती है और इस प्रकार इस विधि से तीन चार यूनिट रक्त बिना किसी झंझट के इकट्ठा कर लिया जाता है जो शल्य क्रिया के समय दिया जा सकता है। इसमें न तो रक्त मिलाने की आवश्यकता है और न ही बीमारी के संवहन की। लेखक इस प्रक्रिया को लगभग बीस वर्षों से अपना रहा है परन्तु विदेशों में और उसकी नकल मे अब अपने देश में इस प्रक्रिया को अपनाया जा रहा है। समस्या हमारी थी लेकिन समाधान आ रहा है विदेशों के द्वारा।

❑❑

संक्रमण
(Infection)

रोगजनक कीटाणुओं या सूक्ष्माणुओं (Pathogenic Micro-organism) के जीवित शरीर में रहने को संक्रमण कहते है। ऐसे कीटाणुओं से उत्पन्न रोगो को संक्रमण रोग (Infections Disease) के नाम से पुकारते हैं क्योंकि वे एक शरीर से दूसरे शरीर में पहुँच सकते हैं और रोग उत्पन्न कर सकते हैं।

सूक्ष्म कीटाणुओं से रोग उत्पन्न होते हैं, इस तथ्य का रहस्योद्घाटन सबसे पहले लुई पाश्चर नामक वैज्ञानिक ने किया था।

संक्रामक रोगो के नामों के अन्त में प्रायः आइटिस नामक शब्द लगा रहता है; जैसे टांसिल का संक्रमण (टॉन्सिलाइटिस - Tonsilitis) अपेन्डिक्स का संक्रमण (अपेन्डिसाइटिस -Appendicitis), श्वांस नली की शाखाओं का संक्रमण (ब्रॉकाइटिस Bronchitis) आदि।

ये कीटाणु इतने सूक्ष्म होते हैं कि नग्न आँखों से देख पाना सम्भव नहीं होता है। इन्हें सूक्ष्मदर्शी की सहायता से देखा जा सकता है। रोग जनक कीटाणुओं में विभिन्न प्रकार के बैक्टीरिया, वाइरस, फफूंद आदि प्रमुख हैं। इनके अलावा रिकेटिशिया, माइको-प्लाज्मा तथा कुछ प्रोटोजोआ (एक कोशीय जन्तु) भी रोग उत्पन्न करते है।

कीटाणुओं के स्त्रोत

कीटाणु वायु मण्डल में हर स्थान पर उपस्थित रहते है।

वायु, धूल आदि इनके प्रमुख स्रोत हैं। इनके अलावा ये जीवित शरीर (मनुष्य तथा जन्तु) में भी पाये जाते है। मनुष्य के नाक, कान, गला, त्वचा, मुँह तथा मल-मूत्र आदि में इनकी बहुतायत होती है। रोगी के उत्सर्ज (Excretion) से निकल कर ये रोगाणु वातावरण में फैल जाते हैं।

संक्रमण विधियाँ (Mode of Transmission of Infection)

किसी स्वस्थ शरीर में संक्रमण निम्न प्रकार से हो सकता है—

1. **मनुष्य की पूर्ण त्वचा** कीटाणुओं को शरीर के अन्दर प्रवेश करने से रोकती है। यही कारण है कि जब घाव हो जाने पर त्वचा का ह्रास हो जाता है तो उक्त स्थान से संक्रमण की संभावनायें बढ़ जाती हैं।

2. **धूल में उपस्थित कीटाणु** या रोगी की छींक व श्वांस द्वारा वायुमण्डल में फैला दिए कीटाणु सांस लेने पर स्वस्थ व्यक्ति की श्वांस नलिका में प्रवेश करके रोग उत्पन्न कर सकते हैं या यहाँ से शरीर के अन्य भागों में रक्त द्वारा पहुँच सकते है — जैसे न्यूमोनिया (Pneumonia), चेचक (Pox), टी. बी. (T.B. or Koch's Infection), (Leprosy) इत्यादि।

3. **खाने-पीने की वस्तुओं** पर धूल पड़ने, मक्खी बैठने या रोगी का जूठा खाने से खाने की वस्तुओं के साथ-साथ कीटाणु अन्दर प्रवेश कर आंतों में बीमारियाँ पैदा कर सकते हैं या रक्त के माध्यम से सारे शरीर में फैल सकते हैं — जैसे तपेदिक (क्षय रोग - Tuberculosis), हैजा (Cholera), मियादी बुखार (Typhoid Fever), पोलियोमाईलाइटिस (poliomyelitis) आदि।

4. **रोगी के प्रयोग में आने वाले कपड़े**, तौलिए या अन्य वस्तुयें यदि किसी दूसरे के द्वारा प्रयोग में लाई जाये तो रोगी के शरीर से निकले कीटाणु स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर सकते है — जैसे चर्म रोग (Skin diseases), आँखों के रोहे (Trachoma) इत्यादि।

5. **पीने का पानी** स्वच्छ या ताजा न होने पर भी पानी के साथ कीटाणु शरीर में प्रवेश कर जाते हैं — जैसे हैजा, मियादी बुखार, पोलियो आदि।

6. **कुछ रोग लैंगिक सम्पर्क** (Sexual Contact) द्वारा भी एक मनुष्य से दूसरे तक पहुँच जाते हैं — गर्मी या आतशक (Syphlis) व सुजाक (Gonorrhea) इत्यादि।

शल्य क्रिया और संक्रमण (Surgery and Infection)

जब भी किसी मनुष्य की कोई शल्य क्रिया होती है तो त्वचा मे घाव बनता है। टांके लगाने से यह घाव अत्यन्त छोटा हो जाता है तथा इसके जल्दी भर जाने की आशा रहती है। आपरेशन के समय या उसके बाद (परन्तु घाव पूरा होने से पहले) यदि रोगजनक कीटाणु घाव में पहुँच जायें तो उस घाव में संक्रमण हो जाता है। पहले तो शरीर की सुरक्षात्मक क्रियाये इन कीटाणुओं का मुकाबला करती हैं, और यदि ये सुरक्षात्मक क्रियायें रोगाणुओं को नष्ट करने मे सफल हो जाती हैं तो घाव भर जाता है। यदि सुरक्षात्मक क्रियाएं समस्त कीटाणुओं को नष्ट नहीं कर पाती तो घाव में मवाद बनने लगता है। मवाद में मृत कोशिकायें, मृत तथा जीवित रोगाणु और डेब्रिस होता है। कोई भी रोगाणुनाशक दवा मवाद में प्रवेश कर जीवित रोगाणुओं का पूर्ण नाश नहीं कर पाती अतः मवाद का बाहर निकाला जाना आवश्यक होता है। शल्य

क्रिया के बाद घाव में संक्रमण होने के निम्न कारण हैं —

(अ) शल्य क्रिया के दौरान संक्रमण : इसके मुख्य कारण हैं —

1. शल्य क्रिया के पूर्व शरीर के उस भाग की उचित सफाई न करना जिस पर शल्य क्रिया होनी है।

2. शल्य कक्ष मे रोगाणु युक्त जूते-चप्पल व कपड़े आदि पहन कर जाने से भी संक्रमण की सम्भावना बढ़ जाती है। हम पहले ही बता चुके हैं कि रोगाणु अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। जिन कपड़ों को हम धुला हुआ मानते हैं उनमें रोगाणु उपस्थित हो सकते हैं अत: शल्य कक्ष मे पहने जाने के लिए विशेष कपड़े होते हैं जिनकी विशेष तरह से धुलाई की जाती है और इनको पहनने का ढङ्ग भी विशेष होता है। इन सब बातों से केवल डाक्टर, नर्स या शल्य कक्ष में काम करने वाले लोग पूर्ण रूप से अवगत होते हैं। यही कारण है कि शल्य कक्ष में हर किसी का प्रवेश वर्जित होता है। इसका उल्लंघन करने पर शल्य कक्ष मे सक्रमण होने की सम्भावना बढ़ जाती है जिसके परिणामस्वरूप रोगी के घाव में मवाद की सम्भावनायें बढ़ जाती हैं।

प्राय: देखा गया है कि जब किसी को शल्यकक्ष में घुसने से रोका जाता है अथवा जूते, कपड़े इत्यादि बदलने को कहा जाता है तो वे उसका अभिप्राय: कुछ और ही समझ लेते हैं और कभी कभी तो यह रोकटोक बहुत-सी गलतफहमियों का कारण बन जाती है।

शल्य कर्म में प्रयोग किए जाने वाले औजारों, कपड़ो, दस्तानों व पट्टियों आदि को विशेष प्रकार की मशीन (Auto-clave) में डाल कर रोगाणु विहीन किया जाता है अन्यथा इसयमे रोगाणुओं के उपस्थित होने के कारण घाव में संक्रमण हो सकता है। इसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं।

(ब) शल्यकर्म के उपरान्त संक्रमण –

1. जैसा कि पहले कहा जा चुका हं प्रत्येक मनुष्य के शरीर पर अनगिनत रोगाणु उपस्थित रहते हैं जो आंखों को दिखाई नही देते हैं। अत: शल्य कर्म के उपरान्त यदि रोगी से मिलने वाले अधिक व्यक्ति आते हैं तो रोगी के घाव में मवाद बनने की सम्भावनायें कई गुना बढ़ जाती हैं।

2. मरीज द्वारा स्वयं या उसके रिश्तेदारों द्वारा घाव या उसकी पट्टी इत्यादि छूने से भी घाव में संक्रमण हो सकता है और मवाद बन सकता है। घाव की पट्टी करने के लिए डाक्टर या नर्स विशेष विधि से हाथ धोकर उसे छूते हैं। पट्टी करते समय यदि रोगी के सम्बन्धी या अन्य लोग खड़े रहते हैं तो खुले हुये घाव में उन व्यक्तियों की सांस से निकले या त्वचा या बालों से गिरे हुए कीटाणु पहुॅच सकते हैं जिससे मवाद बन सकता है।

3. यदि रोगी के शरीर के किसी अन्य भाग में रोगाणु सक्रमण कर चुके हैं तथा इसी के दौरान शल्य कर्म किया जाय तो मूल स्थान से रक्त या लसिकाओं के माध्यम से होकर रोगाणु शल्यकर्म के स्थान (Operated site) तक पहुँच सकते हैं।

इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि शल्य क्रिया जहाँ तक हो सके इस प्रकार की रहे जिसमें घाव का संक्रमता कम से कम हो। सबसे अच्छी स्थिति तो तब होगी जबकि किसी भी शल्य कर्म मे संक्रमण हो ही नहीं। इस प्रकार की शल्य क्रिया Aseptic Surgery कहलाती है इसमें रोगी कम से कम समय में रोग तथा उसके बाद के बुरे असरों (After-effects) से छुटकारा पा लेता है। घाव में संक्रमण होने की स्थिति में शल्य क्रिया (Antiseptic Surgery) होती है जिसमें न केवल घाव ही देर में भरता है परन्तु अन्य बहुत सी कठिनाइयां पैदा हो जाती हैं जो रोगी के स्वास्थ्य के

लिए लाभदायक नहीं है।

घाव के संक्रमण का उपचार

(1) दवाओं द्वारा

बहुत सी दवायें रोगाणु नाशक होती हैं। घाव में रोगाणु पड जाने या उनकी आशंका होने पर इन दवाओं का प्रयोग किया जाता है। ये दवायें गोली, कैप्सूल व घोल के रूप में मुँह द्वारा दी जा सकती हैं अथवा इंजेक्शन द्वारा मांसपेशी (Muscle) या शिरा (Vein) में लगाई जा सकती है।

अलग-अलग रोगाणुओं के विरुद्ध असर करने वाली अलग-अलग दवायें होती हैं। कुछ दवायें ऐसी हैं जो काफी प्रकार के रोगाणुओं पर असर डालती हैं। परन्तु किस रोगी को कौन-सी कीटाणु नाशक दवा दी जानी है इस बात पर निर्भर करता है कि उक्त घाव में किस प्रकार के कीटाणु हैं — इसका निर्णय चिकित्सक ही कर सकता है। साथ ही यह भी चिकित्सक ही बता सकता है कि दवा किस मात्रा में, कितने समय बाद तथा किस प्रकार के रोगी को दी जाय। अतः यह आवश्यक है कि चिकित्सक द्वारा बताई गई दवा, बताई हुई मात्रा में, बताये हुए समय पर व बताई गयी विधि से ही दी जानी चाहिए।

(2) घाव की सफाई व पट्टी (Cleaning and Dressing)

घाव की सफाई करते समय चिकित्सक मवाद तथा मृत ऊतक (Dead Tissues) घाव से अलग कर देता है क्योंकि इनके उपस्थित रहने पर रोगाणु नाशक दवा पूर्ण रूप से प्रभाव नहीं डालती। मवाद पड़ जाने पर घाव में लगे टांके भी निकाल दिये जाते है। घाव को भली-भाँति साफ करके विशेष प्रकार से कीटाणु विहीन की गई (Sterlized) रूई व पट्टी द्वारा घाव को ढँक दिया

जाता है ताकि वायु व धूल में उपस्थित कीटाणु घाव में न पहुँच सकें। घाव की सफाई के लिए प्रयोग की जाने वाली दवाओं मे प्रमुख हैं — हाइड्रोजन-पर-आक्साइड, क्लोरीन वाटर विभिन्न प्रकार के एन्टीबायोटिक या सलफा ड्रग के मरहम अथवा अन्य दवाएँ जैसे मरक्यूरोक्रोम (Mercurochrome), एक्रीफ्लेविन आदि।

चूँकि चिकित्सक या नर्स विशेष विधि से हाथ धोकर विशेष रूप से तैयार होकर घाव की पट्टी आदि करते हैं अत: रोगी के अभिभावकों या किसी अन्य व्यक्ति को रोगी के पास उपस्थित नही रहना चाहिए।

(3) रोगाणुनाशक दवाओं का स्थानीय प्रयोग

कभी-कभी रोगाणु नाशक दवाओं का घाव पर छिड़काव भी किया जाता है। ऐसी दवाओं में से कुछ हैं — आयोडीन, नियोस्पोरिन, सोफ्रामाइसिन, फ्यूरासिन आदि।

रोकथाम के उपाय

1. शल्य कर्म से पूर्व उस भाग की यथोचित सफाई।
2. शरीर के किसी अन्य भाग में संक्रमण खत्म करना।
3. शल्य कक्ष के नियमों का पालन।
4. रोगी से कम से कम लोगों का मिलना।
5. यथोचित ढङ्ग से घाव की पट्टी आदि किया जाना।
6. रोगी या उसके सम्बन्धियों द्वारा घाव या पट्टी न छूना।
7. चिकित्सक के निर्देशानुसार समय पर दवा आदि देना।

घाव में संक्रमण होने में एक विशेष कारण है जिसकी चर्चा हम यहाँ अवश्य करना चाहेगे। प्राय: यह देखा गया है कि घाव या चोट होने पर फौरन टांके लगा दिए जाते हैं व कीटाणु नाशक दवायें (Antibiotics) शुरू कर दी जाती है। घाव में टांके लगाने से पहले यह आवश्यक है कि शल्य चिकित्सक यह सुनिश्चित

करलें कि घाव में संक्रमण होने की संभावना नही है, या कम से कम है, और यह तब हो सकता है, जब घाव कुछ ही घंटे (अधिक से अधिक 6 घंटे) पुराना हो, साफ पट्टी, रुई आदि से ढका रहा हो तथा मांस पेशियों इत्यादि को नुकसान नहीं हुआ हो। कारण यह है कि यदि घाव 6 घंटे से अधिक पुराना है तो रोगाणु उसमें पहुँच चुके होते हैं। इसी प्रकार यदि घाव खुला रहा है या उस पर असंक्रमित रुई या पट्टी नही बाँधी गई है (जिसकी काफी संभावनायें है) अथवा घाव पर पुराना कपड़ा या फिर मिर्च, बूरा इत्यादि भर दिया गया है (काफी लोग विश्वास करते हैं कि बूरा जो देशी खाड के घोल को गरम कर बनाया जाता है या पिसी हुई मिर्च घाव को सक्रमण-विहीन कर देते हैं परन्तु यह भ्रामक है) अथवा मांसपेशियो मे काफी चोट लगी है जिससे कि मांसपेशियों का कुछ भाग मृत या मृत-प्राय (Dead or Dying) हो गये हैं, कीटाणुओं की वृद्धि के लिए उपयुक्त माध्यम होते हैं। यदि इस प्रकार के घावों को टाके लगा कर बन्द कर दिया गया है, और वह भी अधिक से अधिक टाके लगा कर (शायद अधिक टांकों से घाव की गंभीरता का अन्दाज किया जाता है या शल्य चिकित्सक की योग्यता व उसकी फीस का मापदंड) तो यह निश्चित है कि घाव में संक्रमण अवश्य होगा चाहे कितनी ही कीटाणुनाशक दवाये आदि क्यों न दी जाये। यह तो ऐसा ही हुआ कि आपने घर में चोरी की तो बन्द कर दिया और बाहर दरवाजे पर नफीरी ढोल बजाते रहे या दरवाजे को डडो से पीटते रहे। चोर तो आराम से अपना काम करते रहेंगे — खूब नुकसान करेंगे — आप ही सोचिए कैसा रहेगा?

प्राय: देखा गया है कि अगर घाव की पट्टी एक दो दिन नही की जाती है तो रोगी या उसके अभिभावक समझते हैं कि शायद रोगी की उचित देखभाल नहीं की जा रही है। पट्टी केवल घाव को

साफ रखने के लिए है। किसी भी घाव पर की जाने वाली पट्टी केवल घाव की ऊपरी सतह को ही कीटाणु रहित कर सकती है। बार-बार घाव की पट्टी लाभ की जगह नुकसान ही पहुँचती है। क्योंकि जब भी पट्टी की जाती है तो पट्टी करने वाले का लक्ष्य रहता है; घाव को रगड़ कर साफ करना। इसका अर्थ यह हुआ कि घाव मे जो ऊतकों (Granulation Tissue) का निर्माण हुआ है और जो घाव भरने में सहायक होगा, वह अत्यंत नाजुक होने के कारण रगड़े जाने पर नष्ट हो जायगा और घाव भरने में देर लगेगी। कम्पाउन्ड फ्रैक्चर में जिसमें हड्डी के टूटने के साथ ही घाव भी हो जाता है, सफाई आदि करके पट्टी की जाती है और उस पर प्लास्टर कर दिया जाता है और फिर (यदि बहुत ही आवश्यक न हो जाय) घाव प्लास्टर खुलने के साथ ही खोला जाता है।

फोड़ा (Abscess)

यह निर्विवाद सत्य है कि संक्रमण से बचाव ही अच्छी शल्य क्रिया की निशानी है। अच्छे अस्पतालों में शल्य क्रिया को रोगाणुविहीन रखने के लिए अधिक से अधिक उपाय किये जाते है परन्तु अपने देश अधिकांशतः नियमों के पालन में ढिलाई की जाती है और उसके स्थान पर दवाओं की सहायता से इस कमी को पूरा करने का प्रयत्न किया जाता है। उन्नत देशों में शल्य क्रिया के पश्चात् कीटाणु नाशक दवायें नहीं दी जाती हैं। और यदि संक्रमण हो जाता है तो अस्पताल की एक विशेष कमेटी शल्य क्रिया के पूरे कार्य की जाँच करती है और उनकी रिपोर्ट के अनुसार शल्य कर्म हेतु सभी प्रक्रियाओं (Steps) में आवश्यक परिवर्तन कर दिये जाते है। परन्तु अपने देश में इन सब बातों को बड़े ही साधारण तौर से स्वीकार कर लिया जाता है। कारण यह है कि हम अनुशासन भूल चुके है।

□□

प्रत्यारोपण
(Transplantation)

अब तक जितना लिखा जा चुका — वह शल्य क्रिया की कुछ साधारण चर्चायें हैं। इस अध्याय में हम प्रत्यारोपण (Transplantation) की चर्चा करेंगे। इसमें किसी जीव या मनुष्य का एक अग एक रोगी के अंग के स्थान पर लगा दिया जाता है।

शायद सृष्टि के सबसे बड़े शल्य चिकित्सक हैं — भगवान शंकर। भगवान शंकर बाहर गये हुए थे और जब माता पार्वती स्नान करने गयीं तो अपने पुत्र गणेश को पहरेदारी पर नियुक्त कर, आज्ञा दे गयीं कि किसी को भी न आने दें। पुत्र गणेश अपनी ड्यूटी पर मुस्तैद — कि भोला भण्डारी अपने घर को लौट पड़े — घर पहुँच कर जब अन्दर जाने लगे तो गणेश जी ने उन्हें रोक दिया। उन्होंने बताया कि वे शंकर है, पर गणेश पर क्या असर होता। जब गणेश जी ने शिव जी को अन्दर नहीं जाने दिया तो भगवान शिव ने उनका सिर काट कर दूर दिशाओं में फेंक दिया। थोड़ी देर बाद जब पार्वती स्नान करके बाहर आयीं तो उन्हें अपने आज्ञाकारी पुत्र की हालत देख कर बहुत दुःख हुआ। उन्होंने भगवान शिव से प्रार्थना की कि वे उनके पुत्र को पुनः जीवित कर दें। शिव जी चल दिये — गणेश के कटे सिर को ढूँढने — देर होने लगी, परन्तु सिर न मिला। रास्ते मे उन्हें एक हाथी मिला, फिर क्या था, शिव जी ने उसका सिर काटा और गणेश के कटे सिर के स्थान पर लगा दिया और उसी समय से गणेश जी का सिर हाथी का सिर हो गया। शायद शल्य क्रिया की इतनी प्रगति आधुनिक समाज की इस क्षेत्र मे

इन सब मे हे कि दाता व पाने वाले दानो का रक्तग्रुप समान हो। दाता रोग से रहित हो और प्रत्यारोपण शीघ्रातिशीघ्र सम्पन्न कर दिया जाए।

आपने कुछ समय पूर्व अखबारों में एक घटना पढ़ी होगी। बम्बई में 21 वर्षीया युवती कु० रीता मोहन के गुर्दे का प्रत्यारोपण होना था क्योंकि उसके दोनों गुर्दे खराब हो चुके थे और उसका जीवन बचाने का मात्र यही एक रास्ता था। परिवार बहुत छोटा था और उनमें भी जो गुर्दा देने के योग्य (Eligible) था, उसका रक्त इस युवती के रक्त से नहीं मिलता था। अब प्रश्न यह था कि गुर्दा कौन दे, क्योंकि डाक्टरों का यह कहना था कि गुर्दा कोई निकट सम्बन्धी ही दे क्योंकि उनके मन में भी यह डर रहता है कि यह कार्य कहीं लोभ या लालच के लिए न होने लग जाय क्योंकि रक्त के साथ में तो यह स्थिति हो ही चुकी है। फिर तो कोई भी धनाढ्य व्यक्ति अपने धन के बल पर हृदय, गुर्दा, हड्डी आदि सभी कुछ प्राप्त करने में समर्थ हो जायगा। एक विचित्र सी कशमकश डाक्टर व रोगी के परिवार वालों के बीच रही। अंत में एक विचित्र परन्तु सत्य बात हुई। एक युवक आगे आया और उसने घोषणा की कि वह मरणोन्मुख युवती से विवाह कर उसका पति बन सकता है। और फिर अपना गुर्दा युवती को दे सकता है। ऐसी मिसालें कम होती हैं परन्तु होती अवश्य हैं। यह एक उत्कृष्ट त्याग की अनोखी मिसाल है।

❐❐

शल्य क्रिया से बचाव

अब तक हम जितनी चर्चा कर चुके हैं, वह इस बात का द्योतक है कि शल्य क्रिया आधुनिक जीवन का एक आवश्यक अंग बन गई है और इसके लिए डरने या परेशान होने की आवश्यकता नही है। परन्तु इन सबके साथ ही एक प्रश्न आता है कि क्या शल्य क्रिया से बचा जा सकता है? क्या कुछ ऐसा है जिसके करने से जीवन में शल्य क्रिया की आवश्यकता ही न पड़े और अगर पड़े भी तो कम से कम। आखिर शल्य चिकित्सक को किसी अंग को काटने अथवा ठीक करने या मरम्मत करने की आवश्यकता क्यों पड़ती है? आखिर कटे हुए अग का कोई न कोई कार्य तो अवश्य ही है। प्रकृति ने क्या ये अग बिना किसी विशेष कारण के बनाये हैं? और फिर यह बात भी है कि मनुष्य द्वारा बनाये गये या मरम्मत किये गये अंग उतने अच्छे हो ही नहीं सकते, जितने अच्छे प्रकृति ने बनाये थे।

इस अध्याय में हम उन रोगों या परिस्थितियों की चर्चा करेंगे जिनके कारण वे रोग पैदा होते हैं, जिनमें शल्य क्रिया आवश्यक हो जाती है। यहाँ हम यह अवश्य स्पष्ट कर दें कि शल्य क्रिया किसी और पद्धति या दवा आदि का विकल्प नहीं है। यदि कोई रोग दवा (चाहे आधुनिक हो, यूनानी, आयुर्वेदिक या होमियोपैथिक हो) या किसी विशेष पद्धति (जैसे एक्यूपंक्चर, मैगनेटोथेरापी, फिजियोथेरापी) द्वारा ठीक हो सकता है, तो शल्य क्रिया की आवश्यकता नही है क्योंकि शल्य क्रिया से होने वाले नुकसान (Hazards) निम्न हैं :—

1. शल्य क्रिया एक गम्भीर प्रक्रिया है जिसमें कोई भी जरा सी असावधानी जान लेने वाली हो सकती है। इसके अतिरिक्त शरीर

एक साधारण मशीन मात्र न होकर, एक बहुत ही जटिल (Complex-Complicated) मशीन है। यद्यपि शरीर की संरचना व कार्य प्रणाली के बारे में काफी कुछ जाना जा चुका है; फिर भी शरीर को हम पूरी तरह नहीं समझ पाये हैं बल्कि यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि मानव शरीर को हम बहुत कम ही समझ पाये हैं। शरीर मे अनगिनत क्रियायें-प्रतिक्रियायें (Actions-Reactions) चल रही होती हैं और वे केवल आपस में ही सम्बन्धित न होकर, बाहरी कारणों (धूप, गरमी, हवा) के साथ-साथ मानसिक क्रियाओं से भी सम्बन्धित रहती हैं। अत: शल्य-क्रिया का निर्णय लेने से पहले शल्य चिकित्सक को सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि इसका कोई विकल्प (Alternative) है। यदि विकल्प है — तो उससे रोगी के ठीक होने की संभावनाये कितनी है और क्या रोगी इस विकल्प द्वारा अपनी सामान्य (Normal) अवस्था मे आ सकेगा? कुछ दशाओं या रोगों में विकल्प हो सकते हैं परन्तु अधिकांशत: उन रोगों में जिनमें शल्य क्रिया की आवश्यकता होती है; कोई विकल्प नहीं होता है। हाँ, यदि कोई विकल्प मिल सकता है, तो यह सुनिश्चित करना अति आवश्यक है कि वह विकल्प शल्य क्रिया को टालने के लिए तो नहीं है।

2. शल्य क्रिया द्वारा बने चीरे के निशान का स्थान शरीर के अन्य स्थानों की अपेक्षा कमजोर होता है तथा मांसपेशियाँ भी कमजोर होती हैं, वहाँ पर इसलिए हार्निया (Hernia) बनने की आशंका रहती है, जिसे इन्सीजनल हर्निया (Incisional Hernia) के नाम से पुकारते है। यह शरीर का एक कमजोर भाग होता है, जिसमें से आँत आदि के बाहर आने तथा उनके फँसने की सम्भावनायें रहती हैं।

3. पेट की शल्य क्रिया के बाद जब घाव भरता है तो पेट

में बन्ध (Adhesions) बन सकते हैं, जिनसे अंतड़ियों में रुकावट आ सकती है और कुछ समय बाद मरीज को उल्टियाँ या पेट दर्द हो सकता है। कभी-कभी पूर्ण कब्ज (Absolute Constipation) भी हो जाता है; जिसमें मल के अलावा वायु भी बाहर नहीं निकल पाती है। इसमें फिर से आपरेशन की आवश्यकता पड़ सकती है— फिर होता क्या है— 'मर्ज बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा की' अर्थात् आपरेशन—बन्ध— फिर आपरेशन—अधिक बन्ध—फिर से आपरेशन—और अधिक बन्ध ....

4. यदि शल्य क्रिया किसी जोड़ पर की गई है तो जोड़ में सख्ती या रुकावट हो सकती है। कभी-कभी दर्द भी होता है तथा जोड़ की चाल (Joint Movement) कम होने की संभावना हो जाती है। इसके अतिरिक्त जोड़ में संधिशोथ (Osteo-arthristis) होने की आशंका हो जाती है।

5. यदि शल्य क्रिया मस्तिष्क की की गई है तो उक्त स्थान पर बना निशान (स्कार, Scar) मिर्गी (Epilepsy) जैसे रोग का कारण बन सकता है। जिसके कारण झटके लगते हैं या हाथ पैर में कमजोरी आ जाती है।

6. प्राय: देखा गया है कि हड्डी टूटने पर रोगी या उसके अभिभावक टूटी हड्डी का एक्स-रे देखते हैं। वे देखते हैं कि हड्डी शत प्रतिशत बैठ है कि नहीं। यदि नहीं तो उसे ठीक प्रकार से बैठाने का आग्रह करते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि हड्डी जीवित कोशों की बनी होती है। हड्डी टूटने के पश्चात् ये जीवित कोश, और कोशों का निर्माण करते हैं। जहाँ पर कोशों की आवश्यकता होती है वहाँ तो ये कोश बनते जाते हैं, और जहाँ इसकी आवश्यकता नहीं होती है वहाँ ये कोश नष्ट हो जाते हैं तथा कुछ समय पश्चात्
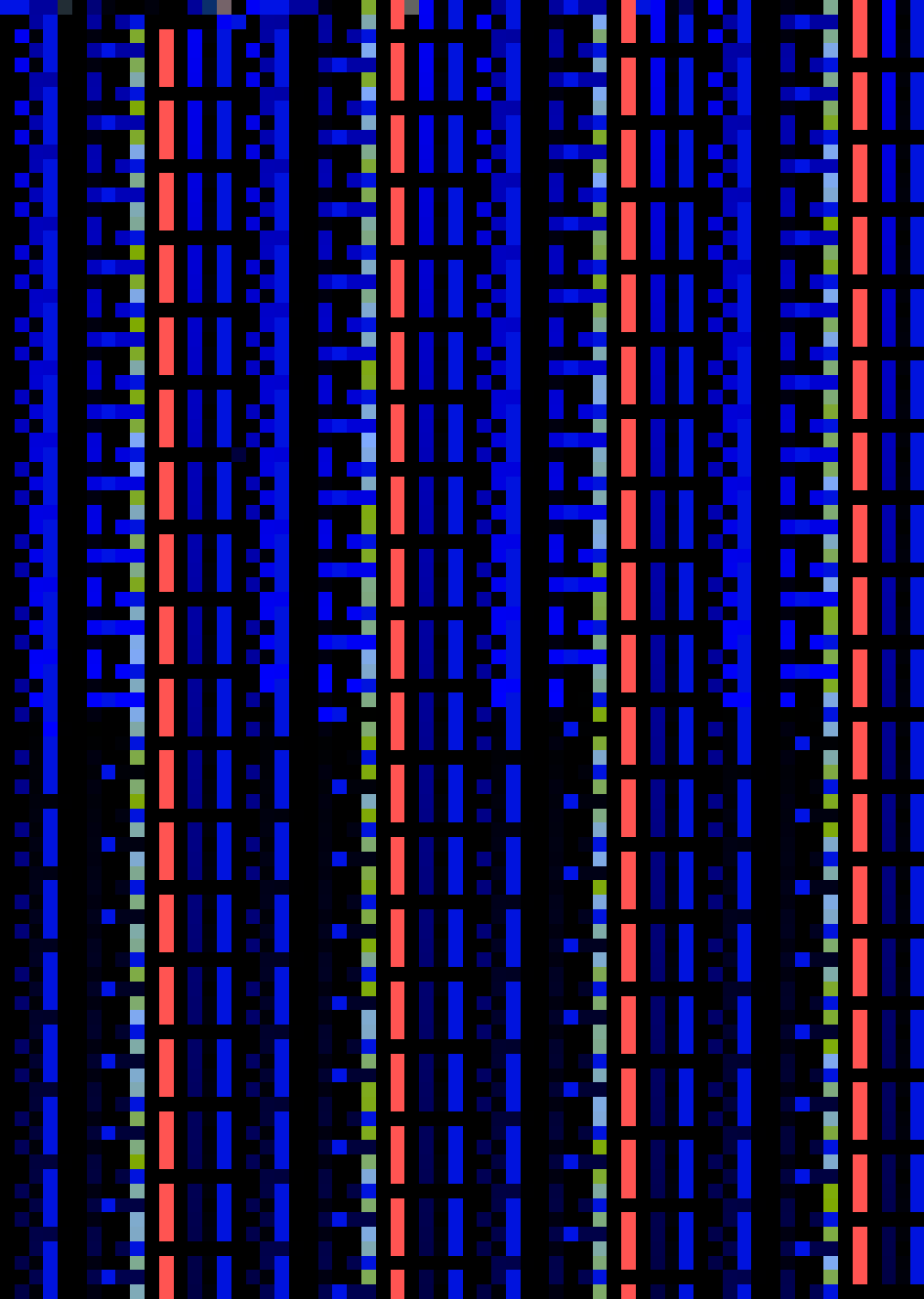
हड्डी पूर्ववत हो जाती है। चिकित्सक यह भली भाँति जानता है, के कहाँ पर हड्डी पूर्ववत हो जाती है। चिकित्सक यह भली भाँति जानता है, कि कहाँ पर हड्डी प्राकृतिक रूप से ठीक हो जायेगी और कहाँ उसे शल्य क्रिया करनी पड़ेगी; परन्तु रोगी या अभिभावकों की जिद अथवा अन्य कारण से शल्य चिकित्सक को आवश्यक न होते हुए भी शल्य क्रिया के लिए बाध्य होना पड़ जाता है। अच्छा तो यह होगा कि शल्य क्रिया का किया जाना या न किया जाना रोगी चिकित्सक पर ही छोड़ दे।

7. शल्य क्रिया से शारीरिक सुन्दरता में कमी आ सकती है।

8. आमाशय (Stomach) या पित्त की थैली (Gall Bladder) की शल्य क्रिया के पश्चात् यह सम्भव है कि लक्षण (Symptoms) कम होने के स्थान पर बढ़ जायें या उनमें परिवर्तन आ जाय।

9. गुरदों (Kidneys) तथा मूत्रवाहिनी (Ureter) की पथरी (Stone) निकालते समय पथरी अपने स्थान से हट सकती है और शल्य चिकित्सक के लिए कठिनाई पैदा कर सकती है।

10. शल्य क्रिया में सबसे बड़ी समस्या घाव को रोगाणु रहित रखना होता है। यदि घाव में रोगाणु रहते हैं तो उसमें मवाद (Pus) बनने की काफी संभावना रहती है, जिससे घाव भरने में समय लगता है। साथ ही मवाद युक्त स्थान रोगाणुओं के भण्डार (Store) के रूप मे कार्य करता है, तथा रक्त के माध्यम से शरीर के किसी भी भाग में अपने दूषित पदार्थ (Toxin) तथा कीटाणु (Bacteria) भेज सकता है। प्रतिरोधात्मक शक्ति कम होने पर रोगाणु गुणित अनुपात में बढ़ सकते हैं (Septicaemia) तथा शरीर के विभिन्न भागों में फोड़े (Pyaemia) भी पैदा कर सकते हैं।

11. यह देखा जाता है कि यदि प्रथम प्रसव आपरेशन (Caessarian Section) द्वारा हुआ है तो आगे भी उसी विधि से पैदा होंगे क्योंकि गर्भाशय पर आपरेशन का स्कार (Scar) दूसरे प्रसव के समय फट सकता है। इस परिस्थिति में चिकित्सक के लिए यह समस्या हो जाती है कि वह दूसरा बच्चा आपरेशन से कराये या प्राकृतिक ढंग से होने दे।

इतना सबके बाद प्रश्न यह है कि क्या शल्य क्रिया से बचा जा सकता है? इसका उत्तर है 'अवश्य'। शल्य क्रिया से कुछ विशेष परिस्थितियों में बचा जा सकता है जिनमें से प्रमुख निम्न हैं —

1. जन्म से ही होने वाले कुछ रोगों के बारे में अब निश्चित हो गया है कि यदि गर्भ धारण के बाद कुछ दवायें (नींद की दवा या उल्टी बन्द करने की दवा इत्यादि) ली जाती है तो बच्चे के अंगविहीन होने या अंग कुरूपता के साथ पैदा होने की काफी संभावनायें रहती हैं। इसी प्रकार यदि गर्भिणी को गर्भ के प्रथम 3 माह में रूबेला (Rubella) नामक बुखार आता है तो जन्मजात हृदय रोग (Congenital Defects of Heart) के होने की काफी सम्भावना रहती है।

टेढ़े पैर वाले बच्चों के जन्म के बाद यह पाया गया है कि उनके जन्म के कुछ समय पूर्व सूर्य या चन्द्र ग्रहण अवश्य हुआ है। यद्यपि यह बात वैज्ञानिक रूप से निर्विवाद सत्य नही हो पायी है परन्तु इतना अवश्य है कि ग्रहणों के बाद अस्पतालों में टेढ़े पैर वाले बच्चों की संख्या बढ़ जाती है।

यह सत्य है कि गर्भवती स्त्री को सन्तुलित आहार (Balanced Diet) अवश्य लेना चाहिए जिसमें समुचित मात्रा में प्रोटीन (Protein), वसा (Fat), कार्बोहाइड्रेट्स (Carbohydrates) के

साथ-साथ लवण (Minerals) तथा विटामिन्स (Vitamins) अवश्य होने चाहिए, पर दवाओं का लेना हानिकारक हो सकता है।

नोट — गर्भ के प्रथम 3 माह में उल्टियाँ बहुत होती हैं इसे Morning Sickness या Vomiting of Pregnancy के नाम से पुकारते हैं। आजकल प्राय: कुछ दवा देने का फैशन होता जा रहा है जो कि हानिकारक होता है। ऐसी ही एक दवा ने विदेशों मे केवल 1 वर्ष में ही इतने अंगविहीन बच्चे पैदा कर दिये थे कि उसका मुआवजा (Compensation) देने मे ही दवा बनाने वाली वह कम्पनी दिवालिया हो गई थी। अभी हमारे देश में इतनी सामाजिक चेतना नहीं आयी है। फिर भी इतना अवश्य है कि गर्भ के प्रथम 3 माह में दवाओं का कम से कम व डाक्टर की सलाह के बाद ही प्रयोग करना चाहिए।

इसी प्रकार गर्भवती स्त्री का एक्सरे (X-ray) कराना भी हानिकारक हो सकता है। गर्भ गिराने की दवा तो अधिकांशत. हानिकारक होती ही है। यदि इन दवाओं के बावजूद गर्भ रह ही जाय तो बच्चा कुरूप (Deformed) हो सकता है या उसका अंग-भग हो सकता है।

2. गर्भ के दिनों में यदि माँ उचित कसरतें करती रहे तो प्रसव कम कष्ट के साथ होगा तथा आपरेशन की आवश्यकता नही पड़ेगी साथ ही दूसरे Complications भी कम ही होंगे।

3. यौवनावस्था में जीवन की भाग दौड़ आमाशय में केवल अधिक अम्ल (Hyperacidity) ही पैदा नहीं करती, पर प्राय आमाशय में घाव (Peptic ulcer) भी पैदा कर देती है। इन घावो के पैदा होने के 3 कारण (Factors) होते हैं — भागदौड़, मानसिक चिन्ता व खाने पीने में गड़बड़ (hurry, Worry and

Curry)। इन तीनों को कम करने से आमाशय में घाव (Peptic ulcer) होते ही नही।

प्राय: बड़े लोग इन रोगों से अधिक ग्रसित रहते हैं। इसका मुख्य कारण है कि वे हर समय पदोन्नति (Promotion), बिक्री (Sales) व आयकर (Income Tax) आदि के झंझटों में पूरी तरह से डूबे रहते हैं। सुबह हुई किसी प्रकार नित्य कर्मों से निवृत्त होकर दफ्तर भागे; दफ्तर में अपने से बड़ों (Superiors) की खुशामद मे लगे रहे। छोटों (Subordinates) को डाँटा-डपटा तथा आने जाने वालों से मुलाकात करते रहे। इस बीच कितनी चाय-काफी व सिगरेटें पीं; कोई अन्दाज नहीं; फिर मीटिंग, कान्फ्रेन्स, सेमिनार आदि। भोजन भी इन्हीं स्थान पर किया और चर्चा भी की तो कम्पनी के घाटे और कम्पनी के कर्मचारियों की (उनके अलावा) कामचोरी पर। वे शायद सोचते हैं कि यदि वे न रहें तो कम्पनी न चले। देर से घर लौटे — पर दिमाग पर उन्हीं सब बातों का बोझ-नींद भी आयी, पर वह भी मदिरा के असर से या नींद की गोली खाने के बाद। ऐसे लोगों को पेट में घाव (Peptic ulcer) रक्तचाप, मधुमेह इत्यादि क्योंकर न होगा। अत: क्या यह आवश्यक है कि एक पदोन्नति के लिए आप एक रोग को दावत दें।

4. इसी प्रकार पित्त की थैली के रोग उनमें अधिक होते है जिन्हें आधुनिक चिकित्सा की भाषा में Fat, Fertile, Flatulent, Forty, Female अर्थात् 40 वर्ष की मोटी, कई बच्चों की माँ तथा वायु विकार वाली स्त्री। ये सभी कारण (Factors) पित्त रोग पैदा करने में सहायक हैं, अत: वसायुक्त (Fatty) वस्तुएं तथा अधिक तली हुई चीजें खाये जाने पर पित्त रोग होने की संभावना रहती है।

5. अपेन्डिक्स की सूजन (Appendicitis) नामक रोग उन्हे

होता है जिन्हें कब्ज रहती है। इसके लिए आवश्यक है कि भोजन की उचित मात्रा उचित समय से ली जाय, तथा भोजन में न पचने वाले पदार्थ (Roughage) भी होने चाहिए। उदाहरण के लिए दूध पूर्ण आहार है इसका प्रत्येक भाग पच जाता है। परन्तु यदि कोई व्यक्ति केवल दूध पर ही रहे तो उसका पाचन संस्थान सामान्य (Normal) नहीं रहेगा। कुछ दूसरे भोजन ऐसे भी है जिनमें न पचने वाला काफी पदार्थ होता है। अधिकांशत: फल व सब्जियाँ इसी वर्ग मे आती हैं। ये न पचने वाले पदार्थ मल को बाहर निकालने मे सहायक होते हैं।

6. आपने ह्रदय (दिल Heart) की बड़ी चर्चा सुनी होगी — "दिल दे दिया" — "दिल दे दिया" — "दिल ने कहा" आदि-आदि अर्थात् दिल को भावनाओं (Emotions) व कोमलता का प्रतीक माना गया है। जबकि सत्य यह है कि ह्रदय केवल शरीर का पम्प हाउस है, जहाँ आक्सीजन विहीन रक्त आता है, वहाँ से फेफड़ों में जाता है, जहाँ उसमें से कार्बन डाई आक्साइड नामक गैस निकालकर आक्सीजन दी जाती है। आक्सीजन युक्त रुक्त फिर दिल में आता है और वहाँ से पम्प करके अन्य भागों में भेजा जाता है। इसके कार्य में गड़बड़ी आने पर कई तरह के दिल के गंभीर रोग (Heart Attach, Myocardial Infractions, Myocardial Ischaemia, Angina आदि) हो जाते हैं।

अब ह्रदय की शल्य क्रिया भी संभव है। ह्रदय को रक्त ले जाने वाली धमनियाँ (Coronary Arteries) में अवरोध होने पर अवरोध को बाईपास (Bypass) किया जा सकता है। इसके लिए पैर की एक शिरा निकाल कर उस अवरोध के ऊपर और नीचे इस प्रकार लगाई जाती है, कि रक्त अवरोध युक्त धमनी में से होकर

जाने के बजाय इस नये रास्ते से होकर जाये।

लेकिन क्या कोई चाहेगा कि हृदय की शल्य क्रिया की जाय?

8. शल्य क्रिया से बचने के लिए आवश्यक है कि दुर्घटनाओं (Accidents) से भी बचा जाय। आप लोगों ने प्राय: देखा होगा कि आजकल नवयुवक सायकिल इस तरह चलाते हैं कि मानो वे सड़क पर न होकर किसी सरकस में काम कर रहे हैं। सायकिल वाला चाहता है कि वह मोटर या स्कूटर से आगे निकल जाये — निकल गये तो ठीक अन्यथा चपेट में आने पर क्या होगा, स्वय सोच सकते हैं।

सड़क को सरकस का मैदान बनाने के अलावा छोटे शहरो मे एक और नया शौक पैदा हुआ है — और वह है सड़क के बीचोबीच या चौराहे पर अपने इष्ट मित्रों सहित सायकिल लेकर खड़े रहना — आने-जाने वाले परेशान लेकिन कौन कहे — किससे कहे — इन छात्रों की जरा-सी भूल जीवन या अंग ले सकती है।

इसी प्रकार गर्मियों की छुट्टियाँ हुईं और बच्चे छत पर पतग के साथ। पतंग उड़ाने व पतंग लूटने में काफी बच्चों के अंग या जीवन जाते हैं। इसी प्रकार से पेड़ से खास तौर पर जामुन के पेड़ से गिरने पर या तो हाथ-पैर टूटते हैं या रीढ़ की हड्डी टूटी और हो गई फालिज (Paralysis) — जरा-सी भूल या लालच जीवन को केवल निकम्मा ही नहीं बनाती वरन समाज, परिवार व स्वय के लिए बोझ भी बना देती है।

इसी प्रकार प्राय: यह देखा जाता है कि बिजली के एक ही प्लग से पंखा, हीटर, प्रेस आदि सभी लगा दिए जाते हैं। जरा सी

भूल होने पर बिजली का झटका (Electric Shock) लगने का खतरा रहता है जिससे जान जा सकती है।

आजकल गाँवों में भी बिजली आ गई है और उसके साथ ही आयी हैं दुर्घटनायें — इसकी चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं।

9. कुछ रोग, जिनमें शल्य क्रिया आवश्यक हो जाती है, मनुष्य के सीधे खड़े (Biped) होने के कारण होते हैं। सृष्टि के प्रारंभ में मनुष्य भी चौपाया (Quadriped) था। सभ्यता के बढ़ने के साथ-साथ जीवन के संघर्ष में मनुष्य को यह लगा कि यदि वह थोड़े से समय के लिए भी दो पैरों पर खड़ा हो सकता तो, वह आगे के दो पैरों (आज के हाथ) से जंगली जानवरों से अपनी रक्षा कर सकता है और इन जानवरों को पत्थर मार कर भगा सकता है। इसके बाद वह आदमी मानव सभ्यता की ओर आगे बढ़ता गया और आज अपने मस्तिष्क के ही बल पर वह अन्य जानवरों से बहुत आगे है। आज वह धीरे-धीरे 4 पैर की जगह 2 पैर वाला हो गया और इसके साथ उसे अपनी इस विशेषता (Posture) के कारण रोग भी होंने लगे जिनमें से मुख्य हैं — (Varicose Veins, P.I.D., Piles, Osteo-arthritis, Lumbago आदि।

यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि जहाँ (Osteo-arthritis hyp) पश्चिमी देशों में एक समस्या है वहीं पूर्वी देशों मे यह नगण्य है। शायद इसका कारण हमारे उठने-बैठने का ढंग भी है। यह देखा गया है कि जिन जातियों या समाज में उकड़ूँ या पाल्थी मार कर बैठते हैं उनमें यह रोग नगण्य है, और विदेश में अधिकाश देशों में जहाँ मेज कुर्सी का प्रयोग होता है, केवल इसी एक रोग के लिए बड़े-बड़े अस्पताल हैं। इंग्लैंड जैसे छोटे देश में अस्पताल की हजारों शाय्यायें केवल इसी एक रोग के उपचार के लिए हैं। वहाँ

के अस्थिशल्य चिकित्सकों की प्रास्थिति (*Status*) का मापदंड इस रोग के आपरेशनों की संख्या है। मिलने पर कोई भी अस्थि शल्यचिकित्सक यह बतायेगा कि उसके इस रोग के आपरेशन की प्रतीक्षा सूची 3 वर्ष की है या 5 से 7 वर्ष की है। लेखक को अपने एक विदेश भ्रमण के समय की घटना याद आती है — वहाँ के अस्पताल में राउण्ड Round करते समय अस्थि शल्य चिकित्सक ने धीरे से पूछा कि क्या मैं अमुक अस्पताल देखने चलूँ। लेखक के मना करने पर उस चिकित्सक बन्धु को थोड़ा आश्चर्य हुआ और शायद बुरा भी लगा क्योंकि अब तक जितने बाहर के शल्य चिकित्सक आये थे, वे सभी उस अस्पताल को उसी प्रकार से देखने जाते थे जैसे भारत में आया कोई विदेशी, आगरे में ताजमहल देखने जाता है। लेखक ने उस चिकित्सक बन्धु के चेहरे पर क्षोभ व आश्चर्य के निशान देख कर केवल यह ही कहा कि यह उसके देश की समस्या नहीं है। और इसका कारण भी स्पष्ट कर दिया। लेखक उसी कक्ष में भूमि पर पाल्थी लगा कर बैठ गया। आप सोचेंगे कि इसमें कौन सी बड़ी बात है; हममें से हर कोई बैठ सकता है परन्तु क्या आप यह सोच सकते हैं कि उस कक्ष में उपस्थित 12 चिकित्सकों में से कोई भी जमीन पर पाल्थी मार कर न बैठ सका और उन चिकित्सक का क्षोभ व गुस्सा आश्चर्य में बदल गया। कुछ दिन बाद ही लेखक का रात्रि भोजन उन्हीं शल्य चिकित्सक के घर पर था और उनके घर पहुँचने पर सबसे पहला आग्रह हुआ कि मैं उनकी पत्नी व बच्चों को कालीन बिछे फर्श पर पाल्थी मार कर दिखाऊँ। यह प्रक्रिया सबने दोहराई। 5 वर्ष से छोटे तो इस प्रक्रिया को कर सके लेकिन बड़े बच्चे कुछ आधा अधूरा ही कर पाये — बड़ों के द्वारा किये जाने का प्रश्न ही नहीं उठता

है। फिर लेखक पद्मासन में बैठ गया तो वहाँ उपस्थित लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। रीढ़ के अधिक रोग (Sciatica, Lumbago, P.I.D. या prolapse Disc) आदि उन्हीं समाजों मे अधिक पाये जाते हैं जो अपने को सम्भ्रान्त या विकसित (Civilized) कहते हैं। एक परिवेक्षण में पाया गया कि ये रोग भारत के आदिवासियों में नहीं के बराबर है। वहीं न्यूयार्क शहर की आबादी का 1/10 भाग इस रोग से कभी न कभी पीड़ित अवश्य रहता है। शायद ही कोई व्यक्ति इन रोगों से बचा हो, और इसका मुख्य कारण है कि कमर की मांसपेशियों की कसरत का न होना। जब एक किसान खेत में काम करता है तो वह आगे की ओर झुकने के साथ–साथ पीछे की तरफ भी झुकता है परन्तु आज का मनुष्य कुर्सी पर बैठ कर मेज पर आगे की ओर झुका घंटों काम करता है। इसका परिणाम यह होता है कि रीढ़ की हड्डी पर अनावश्यक तनाव पड़ता है जिसके कारण कशेरुकाओं के बीच स्थित जेली जैसा पदार्थ अपने स्थान से हट जाता है तथा मेरुदंड (Spine) पर तनाव डालता है। जिससे उक्त रोगों की उत्पत्ति होती है। आगे झुकने की प्रक्रिया के साथ–साथ यदि कमर को सीधा व लचीला बनाये रक्खें तो यह रोग होने की संभावना कम होती है।

अंत में हम यह कहना चाहेंगे कि जीवन को जितना सरल, व प्राकृतिक बनायेंगे उतना ही रोग होने की आशंका कम होती जायेगी।

विश्व के प्राय: सभी देशों ने सन् 2000 तक सब के लिए स्वास्थ्य (Health for all by 2000 AD) की घोषणा में हस्ताक्षर किये हैं, जिसमें भारत भी एक है। इसका अर्थ हुआ कि हम अपने जनमानस तक अगले दस वर्षों में स्वास्थ्य के मूलभूत सिद्धान्त और

सुविधाये पहुचा सकेगे पर जिस गति से काम हो रहा है उसमे ऐसा होना कठिन सा ही लगता है। क्योंकि इस देश में प्राथमिकतायें (Priorities) जन मानस के ऊपर न होकर कुछ विशेष वर्गों की सुविधा के लिए ही होती है। बिना सोचे समझे हम साँचा तो विदेश का लेते हैं और फिट कर देते हैं अपने परिवेश में। इसका सबसे बड़ा उदाहरण है जनता राज्य में खरीदी गई मोबाइल क्लीनिक्स। देश के किसी भी मेडिकल कालेज में ये गश्ती क्लीनिक जो सर्व सुविधाओं से पूर्ण है; खड़ी देखी जा सकती है क्योंकि इनका खाली चलाने का खर्च ही बहुत अधिक है और क्या किया जाय इस देश की सड़कों का और उसके आस–पास लगे पेड़ों का; जिनके वजह से ये गाड़ियाँ चल ही नहीं सकतीं। होना तो यह चाहिये था कि हम बैलगाड़ी या साइकिल पर एम्बुलेंस बनाते ताकि उसे हर गाँव भेज सकते लेकिन हम सोचने के लिए बाध्य हो गये हैं — हेलिकाप्टर एम्बुलेंस के लिए, जिसकी सेवायें शायद ही भविष्य में एक औसतन भारतीय को मिल सकें। साइकिल पर हम बनायेंगे नहीं, हेलिकाप्टर हमें मिलेगा नहीं तो मन में केवल बढ़ेगा क्षोभ, क्लेश, पीड़ा और विद्रोह। और शायद यही हम अपनी भावी पीढ़ी को दे रहे हैं।

❑❑

मरीज की देख-भाल

कोई भी बीमारी शरीर को कमजोर कर देती है, इसलिए उचित चिकित्सा-व्यवस्था के साथ-साथ मरीज की उचित देख-भाल भी बहुत जरूरी है जिससे वह जल्दी से जल्दी ठीक हो सके। इसके लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं।

1. मरीज को शान्त और आरामदेह जगह पर, जहाँ पर रोशनी और ताजी हवा पहुँच सके, रखें। कपड़े उतने ही प्रयोग करें कि न तो उसे ठंड लगे और न ही गर्मी।

2. मरीज की निजी सफाई बहुत जरूरी है, उसे मौसम के अनुसार गर्म या ठंडे पानी से रोज नहाना चाहिए। यदि वह उठ नहीं सकता है, तो गीले तौलिये से सारे शरीर की सफाई करनी चाहिए। उसके कपड़े, चादर व गिलाफ साफ रखें। यदि वह बहुत कमजोर है और अपने आप करवट नहीं बदल सकता तो हर दो घंटे पर उसको करवट दिलाते रहिये व पीठ को स्प्रिट से मालिश करते रहिए जिससे पीठ में एक ही जगह पड़े रहने से होने वाले घाव से बचा जा सके।

3. खाने के लिए अधिकतर रोगों में किसी विशेष आहार की जरूरत नहीं पड़ती लेकिन खाने में तरल पदार्थ व शक्ति वर्द्धक तत्व खूब हों। दूध, हरी साग-सब्जियाँ, दाल के अतिरिक्त फल, माँस, मछली व अण्डा अपनी सामर्थ्य के अनुसार दीजिए। लेकिन भोजन थोड़ा-थोड़ा करके कई बार में दीजिए और जो मरीज उचित मात्रा मे खाना नहीं ले पा रहे हों, उन्हें ज्यादा से ज्यादा मीठे तरल पदार्थ

जैसे चावल गेहूँ, मकई की दलिया मे चीनी घी या वनस्पति घी मिलाकर दे।

4. पीने के लिए चौबीस घंटे में कम से कम ढाई लीटर पानी दें और देखें कि मरीज इतने ही समय में कम से कम एक लीटर पेशाब कर रहा है कि नहीं। यदि नहीं तो उसे और पानी की आवश्यकता है।

5. यदि किसी कारणवश जैसे पतली टट्टी, उल्टी की वजह से शरीर से पानी बाहर निकल रहा है तो एक घोल तैयार करके उसे अधिक मात्रा में मरीज को पिलायें। घोल एक लीटर उबले पानी में दो चम्मच चीनी या प्राकृतिक शहद, चौथाई चम्मच खाने का सोडा और आधा चम्मच खाने का नमक मिला कर तैयार किया जा सकता है। घोल में स्वाद के अनुसार नीबू का रस मिला ले।

6. इसके साथ ही मरीज की स्थिति जानने के लिए उसके नब्ज, साँस की दर, पेशाब की मात्रा, और तापमान को लिखकर रखें।

7. इन सबके साथ आवश्यक है कि आप रोगी को सांत्वना दे — ढाढ़स बढ़ायें। प्राय: देखा गया है कि अभिभावक, मित्र, पड़ोसी इत्यादि रोगी को उस रोग के बारे में अपना ज्ञान-प्रदर्शन करने लग जाते हैं या फिर किसी विशेष डाक्टर या पद्धति की अच्छाई-बुराई। रोगी की शक्तियाँ निर्बल, कमजोर हो ही गई हैं और फिर आपकी यह विचित्र चर्चा, उदाहरण कहीं उसका मनोबल कम न कर रहा हो। अत: आवश्यकता है कि आप कम से कम बोले, मीठा बोलें तथा उसका धैर्य व ढाढ़स बढ़ायें।

❑❑

खतरनाक बीमारियों के लक्षण

अधिकांश रोग प्राय: शीघ्र ही ठीक हो जाते हैं और उन्हे केवल आवश्यकता होती है — लक्षणों का उपचार (Symptomatic Treatment) की। जैसे कि अगर दर्द है — सर, कमर, बदन, हाथ, पैर कहीं भी तो, कोई भी दर्द निवारक दवा — एस्पीरीन (Aspirin), पैरासिटामोल (Paracetamol) की गोली दूध या खाने के साथ काफी रहेगी। इसी प्रकार खून की कमी (Anaemia) में लौह की गोली। पर आपको यह जानना आवश्यक है कि कहाँ पर आपको उचित चिकित्सा का प्रबन्ध करना है।

वे बीमारियाँ जिनमें डाक्टर की आवश्यकता है, निम्नलिखित हैं–

1. शरीर के किसी भाग से बहुत ज्यादा खून बहना।
2. खाँसी के साथ खून आना।
3. होठों और नाखूनों का नीला पड़ना।
4. साँस फूलना, जिसमें आराम करने से भी लाभ न हो।
5. बेहोशी।
6. कमजोरी कि उठते ही बेहोश हो जाय।
7. एक या एक से ज्यादा दिन पेशाब का न होना।
8. एक या एक से ज्यादा दिन तक तरल पदार्थ का सेवन न करना।
9. तेज उल्टी या दस्त जो एक से ज्यादा दिन रहे, बच्चो मे कुछ घंटे।

10. तारकोल जैसी काली टट्टी होना या उल्टी में खून निकलना।

11. उल्टी के साथ पेट दर्द और टट्टी पेशाब का न होना।

12. कोई तेज दर्द जो तीन दिन से ज्यादा रहे।

13. कड़ी गर्दन, धनुषाकार कमर या जबड़े का न खुलना।

14. एक से ज्यादा मिर्गी के दौरे।

15. तेज बुखार जो 4-5 दिन तक रहे।

16. दीरे-धीरे वजन कम होना।

17. पेशाब में खून आना। (विशेषकर बिना दर्द के)

18. घाव जो बढ़ता रहे और इलाज से भी ठीक न हो।

19. शरीर के किसी हिस्से में गिल्टी, जो लगातार बढ़ती रहे।

20. गर्भ अवस्था और प्रसव की समस्यायें —

— गर्भावस्था में रक्तस्राव

— मुँह और पैर की सूज

— आखिरी महीने में नजर कमजोर पड़ना

— पानी शुरू होने पर पीड़ा शुरु होने के बाद भी काफी समय तक बच्चा न होना।

— तेज रक्त स्राव।

21. वे सारे लक्षण जो समय के साथ बढ़ रहे हों और उचित इलाज के बावजूद कष्ट दे रहे हों।

❑❑

दवाओं का प्रयोग

दवा (Drug) औषधि शरीर की आवश्यक भाग नहीं है, वे अधिकांशत: विजातीय पदार्थ (Foreign Substances) हैं जो शरीर को दूसरे विजातीय पदार्थों से लड़ने या नष्ट करने में सहायता करते है। इस कारण यह आवश्यक है कि —

1. दवा तभी प्रयोग करें, जब सचमुच उसकी जरूरत हो।

2. दवा प्रयोग करने के तरीके व सावधानियाँ जानें।

3. दवा उचित मात्रा मे लें।

4. यदि दवा से लाभ न हो या कोई दूसरी समस्या कर रही हो, तो तुरन्त बन्द कर दें।

5. यदि कोई शक हो, तो डाक्टर या स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता से मिले।

यहाँ मुझे एक कहानी याद आ रही है—एक बुजुर्ग जिन्के पास धन व समय दोनों ही काफी मात्रा नें था—डाक्टर के पास पहुँचे, जाँच करवाई, पर्चे पर दवा लिखवाई (खूब अधिक सी), दवा की दुकान से दवा खरीदी और सब शीशी तोड़ दी। रोज वह यही किया करते। एक व्यक्ति जो कई दिन से यह देख रहा था, बुजुर्ग से पूछ ही बैठा—जब आप दवा खाते ही नहीं तो डाक्टर के पास जाते क्यों हैं? उत्तर मिला —डाक्टर को भी जीना है। उसने फिर पूछा—तो फिर दवा क्यों खरीदते हो? उत्तर था —दुकानदार को भी परिवार चलाना है—उसे भी जीना है। उस व्यक्ति से नही रहा गया और झुंझला कर बुजुर्ग से पूछ ही बैठा —तो फिर आप

दवा खाते क्यो नही?

बुजुर्ग ने बड़े ठंडे दिमाग से उत्तर दिया — मुझे भी जीना है

अत: यह आवश्यक है कि दवा को चिकित्सक की सलाह से उचित मात्रा तथा उचित समय तक ही लेना है।

अन्त में, लेखक का पूरा विश्वास है, दवा और शल्य-क्रिया से जहाँ तक बचा जा सके, अच्छा है। परन्तु यदि आवश्यकता है तो उसमे कोई देर, टाल-मटोल नहीं होना चाहिए। और यह काफी अशों मे तभी संभव है, जब हम अपने को मानसिक, शारीरिक तथा भौतिक वातावरण से समरस कर लें। रामराज्य की कल्पना ही थी —

दैविक, दैहिक, भौतिक तापा ।
रामराज्य काहू नहीं व्यापा।।

सुखमय जीवन के लिए प्रकृति के साथ जियें, प्रकृति के अनुसार चलें।

अन्त में मेरी यही कामना है कि भगवान आपको सदैव स्वस्थ और सुखी रखे।

ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति:

❐❐